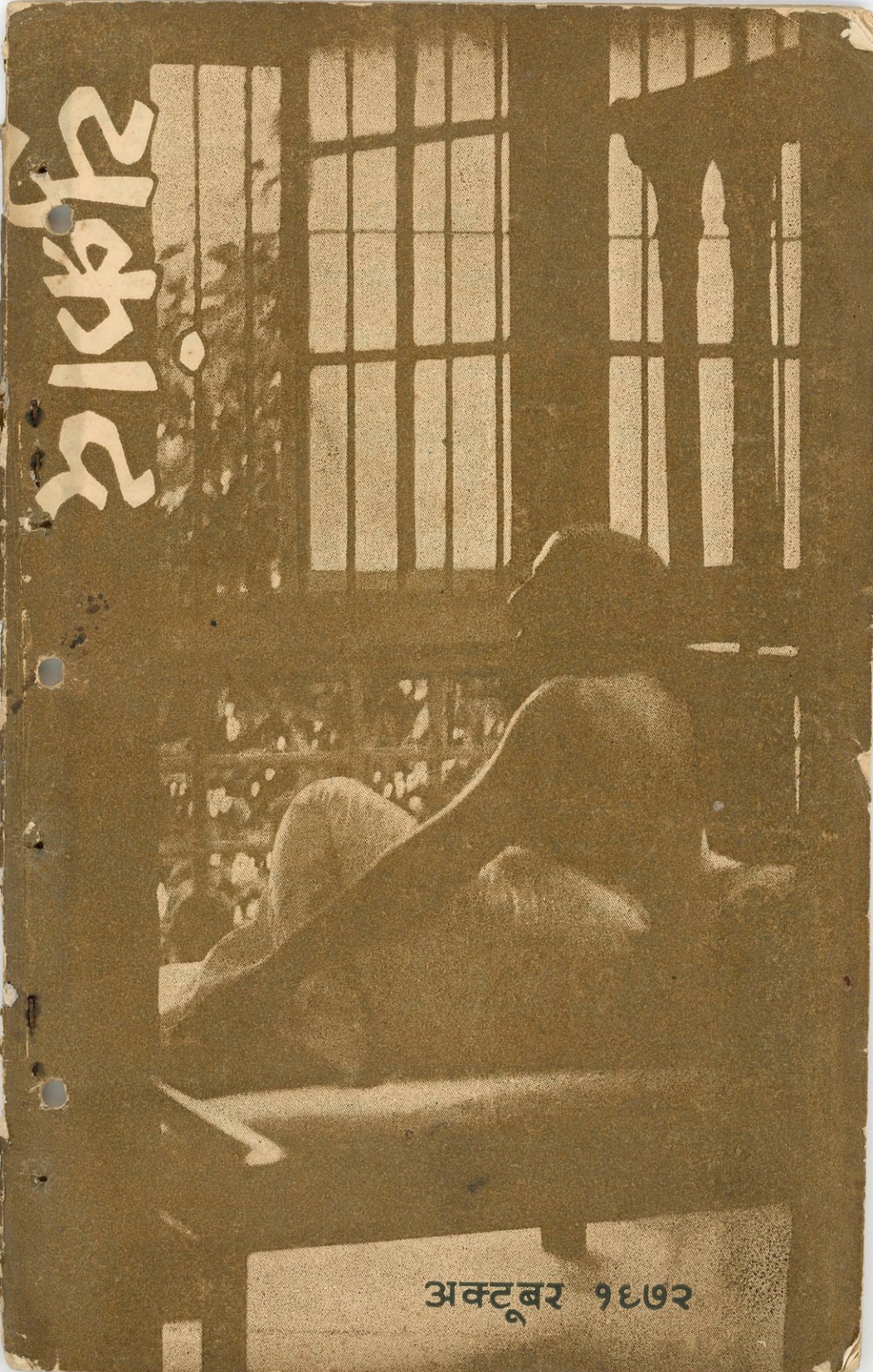

अक्टूबर १६७२

हिंसा और प्रेम

(भगवान श्री के उद्बोधनों से)

हिंसा :

★ सबसे पहली हिंसा दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है। जैसे ही मैं कहता हूं कि आप दूसरे हैं, मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। असल में दूसरों के प्रति अहिंसक होना असंभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, ऐसा स्वभाव है। दूसरे को दूसरा स्वीकार लेने में ही हिंसा शुरू हो गयी—बहुत सूक्ष्म, बहुत गहरी है यह बात।

प्रेम :

★ दूसरे को दूसरा समझने में नरक है। इसलिये जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमें मिलते हैं, वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं। उसे हम प्रेम कहते हैं। किसी क्षण में दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है।

★ लेकिन जिसे हम अपना समझते हैं, वही गहरे में दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है, कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते हैं। इसलिये जिसे हम प्रेम कहते हैं उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। और इसलिये प्रेम की वह जो ज्योति है, कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है—कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। चौबीस घंटे में कई बार यह बदलाहट होती है। वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा बीच में आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पड़ने लगता है तब हिंसा थोड़ी कम हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते हैं वह भी दूसरा है। पत्नी दूसरी है चाहे कितनी भी अपनी हो। बेटा भी दूसरा है चाहे कितना ही अपना हो। अपना कहने में भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता। प्रेम की हिंसा के भी अपने ढंग हैं।

हिंसक प्रेम :

★ प्रेम अपने प्रेमपूर्ण ढंग से हिंसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढंग से सताती है—पति, पत्नी को और बाप, बेटे को। और जब सताना प्रेम हो तो बड़ा सुरक्षित हो जाता है, सताने में सुविधा मिल जाती है। क्योंकि हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया है। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है, तुम्हारे हित के लिये

शेष कव्हर ३ पर ▶▶▶

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

अक्टूबर १९७२

प्रबुद्ध

वर्ष – ४ अंक – ७ : ८

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

अक्टूबर : १९७२

मानसेवी

सम्पादक : अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे, 'आकुल' राजेन्द्र

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अ नु क्र म णि का

: पृष्ठ :

कण-कण अमृत	३	भगवान श्री के अमृत-वचन
प्रेम	४	भगवान श्री की बोध कथाओं से
देश के जलते प्रश्न (एक प्रवचन)	५	संकलन : एन जी वखारिया, अहमदाबाद
गुरु-शिष्य सम्बन्ध (अंग्रेजी में दी गई वार्ताओं से अनूदित)	३०	अनुवाद : स्वामी परमानन्द भारती, अजमेर
फूल, फूल और फूल	५२	संकलन : स्वामी अगेह भारती
संतति नियमन और क्रांति	५३	संक्षिप्त संकलन : 'आकुल' राजेन्द्र

गीत : काव्य

विरोधाभास	२९	'आकुल' राजेन्द्र

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957

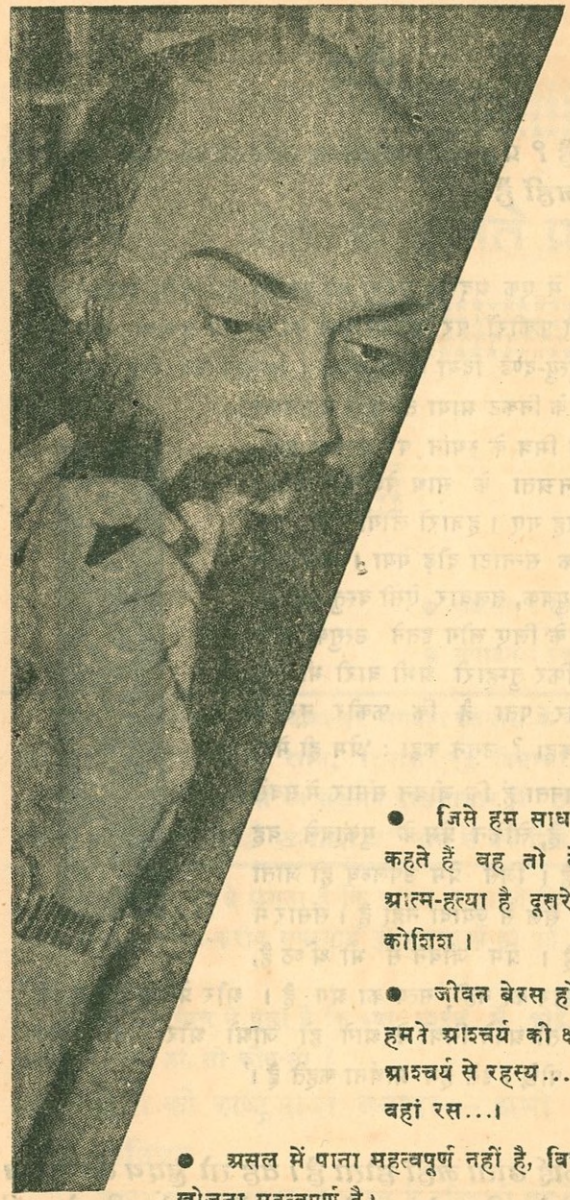

- सिर्फ मृत्यु से डरे हुए आदमी में अहंकार होता है।

- जिसे हम साधारणतः आत्म-हत्या कहते हैं वह तो देह-हत्या ही है। आत्म-हत्या है दूसरे जैसे बनने की कोशिश।

- जीवन बेरस हो गया है, क्योंकि हमने आश्चर्य की क्षमता खो दी है। आश्चर्य से रहस्य... और जहां रहस्य वहां रस...।

- असल में पाना महत्वपूर्ण नहीं है, विचारवान के लिए खोजना महत्वपूर्ण है।

- विचारवान व्यक्ति अगर मुफ्त में मिलता है परमात्मा, तो ठुकरा देगा।

प्रेम

प्रार्थना क्या है ? प्रेम और समर्पण, और जहां प्रेम नहीं है, वहां प्रार्थना नहीं है।

प्रेम के स्मरण में एक अद्‌भुत घटना का उल्लेख है। नूरी, रक्काम एवं अन्य कुछ सूफी फकीरों पर काफिर होने का आरोप लगाया गया था, और उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जा रहा था। जल्लाद जब नंगी तलवार लेकर रक्काम के निकट आया तो नूरी ने उठकर स्वयं को अपने मित्र के स्थान पर अत्यन्त प्रसन्नता और नम्रता के साथ पेश कर दिया। दर्शक स्तब्ध रह गए। हजारों लोगों की भीड़ थी। उनमें एक सन्नाटा दौड़ गया। जल्लाद ने कहा : 'हे ! युवक, तलवार ऐसी वस्तु नहीं है, जिससे मिलने के लिए लोग इतने उत्सुक और व्याकुल हों। फिर तुम्हारी अभी बारी भी नहीं आई है ?' और पता है कि फकीर नूरी ने उत्तर में क्या कहा ? उसने कहा : 'प्रेम ही मेरा धर्म है। मैं जानता हूं कि जीवन संसार में सबसे मूल्यवान वस्तु है, लेकिन प्रेम के मुकाबले वह कुछ भी नहीं है। जिसे प्रेम उपलब्ध हो जाता है, उसे जीवन खेल से ज्यादा नहीं है। संसार में जीवन श्रेष्ठ है। प्रेम जीवन से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह संसार का नहीं, सत्य का अंग है। और प्रेम कहता है कि जब मृत्यु आये तो अपने मित्रों के आगे हो जाओ और जब जीवन मिलता हो तो पीछे। इसे हम प्रार्थना कहते हैं।'

प्रार्थना का कोई ढांचा नहीं होता है। वह तो हृदय का सहज अंकुरण है। जैसे पर्वत से झरने बहते हैं, ऐसे ही प्रेमपूर्ण हृदय से प्रार्थना का आविर्भाव होता है।

देश के जलते प्रश्न

● संकलन : एन० जी० वखारिया

● संपादन : स्वामी योग चिन्मय

अहमदाबाद में इस विषय पर भगवान रजनीश के पांच प्रवचन हुए हैं। प्रस्तुत प्रवचन चौथा है, जो रात्रि, दिनांक २५ दिसम्बर, १९६९ को दिया गया है। इन पांचों प्रवचनों का संकलन पुस्तकाकार में *"आह मेरे भारत: जिंदा समस्याएं, मुर्दा समाधान"* नाम से प्रकाशित होने जा रहा है।

प्रश्नों के ढेर से लगता है कि भारत के सामने कितनी जीवन्त समस्यायें होंगी। करीब-करीब समस्यायें ही समस्यायें हो गई हैं और समाधान नहीं हैं।

● एक मित्र ने पूछा है कि क्या भारत में कोई राष्ट्रभाषा होनी चाहिए ? यदि हां, तो कौन-सी ?

(१) हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना— अभी देश के लिए हानिप्रद

राष्ट्रभाषा का सवाल ही भारत में बुनियादी रूप से गलत है। भारत में इतनी भाषाएं हैं कि राष्ट्रभाषा सिर्फ लादी जा सकती है और जिन भाषाओं पर लादी जायगी उनके साथ अन्याय होगा। भारत में राष्ट्रभाषा की कोई

जरूरत नहीं है। भारत में बहुत-सी राष्ट्रभाषाएं ही होंगी और आज कोई कठिनाई नहीं है कि राष्ट्रभाषा जरूरी हो। आज तो यांत्रिक व्यवस्था हो सकती है संसद में बहुत थोड़े खर्च से, जिसके द्वारा एक भाषा सभी भाषाओं में अनुवादित हो जाय। लेकिन राष्ट्रभाषा का मोह बहुत मंहगा पड़ रहा है। भारत की प्रत्येक भाषा राष्ट्रभाषा होने में समर्थ है, इसलिए कोई भी भाषा अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं होगी—होना भी नहीं चाहिए। लेकिन यदि हमने जबरदस्ती किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाकर थोपने की कोशिश की तो देश खण्ड-खण्ड हो जायगा। आज देश के बीच विभाजन के जो बुनियादी कारण हैं उनमें भाषा एक है। **राष्ट्रभाषा बनाने का खयाल ही राष्ट्र को खण्ड-खण्ड में तोड़ने का कारण बनेगा,** लेकिन हम पर यह भूत जोर से सवार है कि राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। अगर राष्ट्र को बचाना है तो राष्ट्रभाषा से बचना पड़ेगा और अगर राष्ट्र को मिटाना हो तो राष्ट्रभाषा की बात आगे भी जारी रखी जा सकती है।

मेरी दृष्टि में भारत में जितनी भाषायें बोली जाती हैं वे सब राष्ट्रभाषायें हैं, उनको समान आदर उपलब्ध होना चाहिए। किसी एक भाषा का साम्राज्य दूसरी भाषा पर बरदाश्त नहीं किया जा सकता, वह भाषा चाहे हिन्दी हो और चाहे कोई और हो। कोई कारण नहीं है कि तमिल, या तेलुगू, या बंगाली, या गुजराती को हिंदी दबाये; लेकिन गांधी जी के कारण कुछ बीमारियां इस देश में छूटीं, उनमें एक बीमारी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का वहम देने की भी है। हिन्दी को यह अहंकार गांधी जी दे गये कि वह राष्ट्रभाषा है, तो हिन्दी-भाषी प्रांत उस अहंकार से परेशान हैं और वह अपनी भाषा को पूरे देश पर थोपने की कोशिश में लगे हुए हैं। स्वाभाविक है कि इसकी बगावत हो। हिन्दी का साम्राज्य भी बरदाश्त नहीं किया जा सकता, किसी भाषा का नहीं किया जा सकता। कोई अड़चन भी नहीं है। सिर्फ संसद में हमें यांत्रिक व्यवस्था करनी चाहिए कि सारी भाषाएं अनूदित हो सकें। और वैसे भी संसद तो कोई काम करती नहीं है कि कोई अड़चन हो जायगी। सालों तक एक-एक बात की चर्चा चलती है, थोड़ी और देर चल ले, इससे कोई फर्क नहीं होने वाला है। संसद कुछ करती हो तो भी विचार होता कि कहीं कार्य में बाधा न पड़ जाय।

फिर मेरी दृष्टि यह भी है कि **यदि हम राष्ट्रभाषा को थोपने का उपाय न करें तो शायद बीस-पच्चीस वर्षों में कोई एक भाषा विकसित हो और धीरे-**

धीरे राष्ट्र के प्राणों को घेर ले। वह भाषा हिन्दी न होगी— वह भाषा हिंदुस्तानी होगी। उसमें तमिल के शब्द भी होंगे, तेलुगू के भी, अंग्रेजी के भी, गुजराती के भी, मराठी के भी। वह एक मिश्रित नई भाषा होगी जो धीरे-धीरे भारत के जीवन में से विकसित हो जायगी। लेकिन अगर कोई शुद्धतावादी चाहता हो कि शुद्ध हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है, तो वह सब पागलपन की बातें हैं, इससे कुछ हित नहीं हो सकता है।

● **एक मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या अंग्रेजी को देश से हटाया जाय?**

(२) अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी भाषा को भारत में बचाना अत्यन्त जरूरी

अंग्रेजी को देश से हटाना बहुत आत्मघाती होगा। विगत दो सौ वर्षों में अंग्रेजी के माध्यम से हम जगत से सम्बन्धित हुए। और विगत दो सौ वर्षों में जगत में जो भी महत्वपूर्ण निर्मित हुआ है, वह अंग्रेजी-भाषी लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है और आने वाले भविष्य में भी अंग्रेजी का जगत निरंतर विकास, विस्तार और खोज करता रहेगा। **यदि अंग्रेजी को भारत से हटाने की चेष्टा की गयी तो हम अपने हाथ से जगत से टूटकर कुएं में बन्द हो जायेंगे।** वह बहुत मंहगा पड़ेगा। लेकिन हमको सुखद लग सकता है कि अंग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है, इसलिए हटाओ। लेकिन **अब सवाल अंग्रेजों की भाषा का नहीं, अब सवाल अंतर्राष्ट्रीय भाषा का है।** और हमें अच्छा लग सकता है कि अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ; तो अंग्रेजों की मोटरें, रेलगाड़ियां और हवाई जहाज हटाने के सम्बन्ध में क्या खयाल है? सारी टेक्नोलाजी पश्चिम से आई है और अगर उस टेक्नोलाजी में दुनिया के साथ खड़े होना है, तो अंग्रेजी पर अधिकार अत्यंत आवश्यक है—हमारे हित में है; पश्चिम के हित में नहीं है।

आज सारी दुनिया धीरे-धीरे अंग्रेजी जगत से सम्बन्धित होती जा रही है। हर युग की एक भाषा होती है। उस युग की भाषा वही होती है, जो उस युग को सर्वाधिक दान देती है। हमारे देश की कोई भी भाषा अभी जगत-भाषा नहीं बन सकती, क्योंकि जगत के विकास में हमारा आज कोई कंट्रीब्यूशन, कोई योगदान नहीं है। न हमने यंत्र दिये हैं, न हमने समृद्धि दी है, न सुख दिये हैं। हमने विश्व को रूपांतरित करने के लिए आज कुछ भी नहीं दिया है। **जो भाषा आज सर्वाधिक दान करेगी वही भाषा जगत की भाषा बनेगी।** हमें इतना समर्थ होना पड़ेगा—इतना आविष्कारक, इतना वैज्ञानिक;

तब हमारी कोई भाषा जागतिक महत्व की हो सकती है। लेकिन **आज अंग्रेजी को अपने से तोड़ना बहुत मंहगा पड़ जायगा।**

सच तो यह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद हमें अंग्रेजी को बचाने की तीव्रतम चेष्टा करनी चाहिए। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से ऐतिहासिक संयोग था कि हमें डेढ़ सौ या दो सौ वर्ष अंग्रेजी से संबंधित होने का मौका मिला। इस मौके को हम अपना वरदान सिद्ध कर सकते हैं। आज दुनिया में गैर-अंग्रेजी भाषी देशों में हमारा देश अकेला देश है जो ढंग से अंग्रेजी में सोच सकता है, विचार सकता है, बात कर सकता है। इस मौके को खो नहीं देना चाहिए। यह मौका हमने खोया है। बीस वर्षों में अंग्रेजी की क्षमता हमारी निरंतर कम हुई है, क्योंकि हमको यह खयाल है कि अब अंग्रेजी की कोई जरूरत नहीं है। अंग्रेजी की जरूरत रोज-रोज बढ़ती चली जायगी। **न केवल अंग्रेजी की जरूरत पड़ेगी, बल्कि भविष्य में हमें रूसी भी सीखनी पड़ेगी, चीनी भी सीखनी पड़ेगी। पर देश के नासमझ नेता उसको छोड़ने की बात कर रहे हैं।**

अंग्रेजी बचाने की चेष्टा अत्यंत जरूरी है, लेकिन अंग्रेजी को कोई राष्ट्रभाषा बनाने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है, इसलिए राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा की जरूरत ही नहीं है। देश की सभी भाषाएं राष्ट्रभाषा की हैसियत से काम करें। **अंग्रेजी हमारे लिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंध की भाषा रहे और उसमें जितने निष्णात हो सकें उतना अच्छा है।** लेकिन अंग्रेजी के साथ गुलामी का दंश जुड़ गया है। उस दंश से हमें बचना चाहिए। गुलामी ने कुछ अच्छाइयां भी दी हैं और कुछ बुराइयां भी दी हैं। बुराइयों को काट डालना जरूरी है। अच्छाइयों को बचा लेना जरूरी है, सिर्फ इसलिए कि वे गुलामी के क्षणों में हम पर आयीं, उनसे छूट जाना अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना होगा।

ठीक से समझा जाय तो मुसलमानों की हुकूमत इस देश में एक हजार साल चली; और उसका कुल कारण इतना था कि मुसलमान संस्कृति ने भारत को कुछ भी शिक्षित करने की कोशिश नहीं की। अंग्रेज भी भारत में एक हजार साल तक चल सकते थे, ज्यादा चल सकते थे। लेकिन अंग्रेजों ने एक भूल की, उन्होंने भारत को शिक्षित करने की कोशिश की। उनकी शिक्षा ज्यादा बगावत का कारण बनी। हिन्दुस्तान में जो बगावत, विद्रोह और क्रांति की भावना पैदा हुई—लोकतंत्र, स्वतंत्रता का जो खयाल पैदा हुआ, वह

पश्चिम से आया। भारत की कांग्रेस संस्था, जिसने इस क्रांति को अगुआयी दी, अंग्रेजों के द्वारा निर्मित संस्था थी और भारत के सारे नेता जिन्होंने इस देश को विचार दिये और क्रांति में ले गये, पश्चिम में शिक्षित हुए थे और पश्चिम से स्वतंत्रता का और क्रांति का खयाल लेकर लौटे थे।

क्रांति का खयाल भारतीय नहीं। भारत ने कभी क्रांति नहीं की है। विद्रोह और बगावत की बात भारतीय नहीं है। **भारतीय मन संतोष और तृप्ति को मानता है, क्रांति और बगावत को नहीं।** भारतीय मन सब स्थितियों में राजी होने को तैयार है, तोड़ने को बदलने को नहीं। परिवर्तन की आकांक्षा बिलकुल अभारतीय है और अंग्रेजों के द्वारा इस देश में आई। विज्ञान की भी सारी क्षमता उनके मार्ग से हम तक आई। निश्चित ही गुलामी बहुत दुखद थी और गुलामी से जो भी हमारे पास आया उससे भी हमारा सम्बन्ध हो गया। हमें सोच-समझकर काम करना पड़ेगा। माना कि पैर में घाव हो जाय तो बहुत दुख होता है, परन्तु हम घाव को अलग कर देते हैं, पैर को बचा लेते हैं; लेकिन पैर को ही अलग नहीं कर देते। बहुत घाव लगे गुलामी में, लेकिन उन घावों के साथ कुछ पश्चिम की संस्कृति का श्रेष्ठ भी हम तक आया। उसे बचा लेने की अत्यंत जरूरत है।

भारत के आधुनिकीकरण में, भारत के माडर्नाइजेशन में पश्चिम से जो कुछ आया है— उसकी अनिवार्य जरूरत पड़ेगी, अन्यथा हम बहुत पीछे रह जायेंगे। आज विज्ञान की श्रेष्ठतम शाखाओं में जो भी उपलब्ध किया जा रहा है, उसका अगर हम अनुवाद करने बैठें तो हम दो सौ वर्ष तो अनुवाद में लगा देंगे। और दो सौ वर्ष, जब तक हम इसका अनुवाद करेंगे तब तक, विज्ञान ठहरा नहीं रहेगा। वह दो सौ वर्ष आगे निकल जायेगा। इतने जोर से क्रांति हो रही है कि अनुवाद के द्वारा काम नहीं हो सकता। हमें सीधा ही सम्पर्क बांधना होगा, अन्यथा हम सम्पर्क से खो जायंगे और **इस सीधे संपर्क के लिए अंग्रेजी को बचा लेना अत्यन्त जरूरी है।** और अब हम अंग्रेजी को हिम्मत से और प्रेम से बचा सकते हैं, क्योंकि वह अब गुलामी की बात नहीं, अब वह अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की और सीखने की बात है। अंग्रेजी तो अनिवार्य होनी ही चाहिए, उससे तो छुटकारा नहीं। उससे छुटकारे की बात ही मंहगी है।

हमारा मन करता है, अंग्रेजी से बचने को, क्योंकि अंग्रेजी सीखने की कठिनाई है। हमारा मन करता है इससे छुटकारा हो जाय। युवक पसंद

करेगा कि अंग्रेजी से छुटकारा हो जाय। असल में कठिनाई से बचने की कौन कोशिश नहीं करता है ? लेकिन **कठिनाई से बचने की जो कौम कोशिश करती है वह धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है और नष्ट हो जाती है।** पहले अतीत में, इतिहास में भी हमने कठिनाइयों से बचने की कोशिश में बहुत कुछ गंवाया है, अब आगे हम कठिनाइयों से बचेंगे तो बहुत बुरी बात हो जायगी। कठिनाइयों से नहीं बचना है। कठिनाइयों को स्वीकार करना पड़ेगा, उनकी चुनौती माननी पड़ेगी और उन कठिनाइयों से गुजर कर देश की नई पीढ़ी को ठीक से निर्मित करना होगा।

अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा की तरह हमें सीखनी ही है, उससे छुटकारा नहीं कर लेना है। और राष्ट्रभाषा विकसित हो सकती है, अगर थोपी न जाय। हिंदी धीरे-धीरे विकसित हो रही है। उसके प्रति प्रेम था दक्षिण में भी, बंगाल में भी, गुजरात में भी—सब तरफ उसके प्रति प्रेम था। लेकिन जैसे ही राष्ट्रभाषा का खयाल आया और हिन्दी ने कोशिश की कि राष्ट्रभाषा बन जाय और हिन्दी साम्राज्यवादी कुछ नेतागण पागल की तरह उसको राष्ट्रभाषा बनाने में लग गये वैसे ही तनाव पैदा हो गया और सारा मुल्क तन गया और उसने कहा, वह बरदाश्त नहीं किया जा सकता। नहीं करना चाहिए ' गलत है बरदाश्त करना। **कोई भी चीज थोपी नहीं जा सकती और भाषायें थोपने से विकसित नहीं होतीं। भाषायें प्रेम से, अंतर्सम्बन्धों से विकसित होती हैं।** वे अपने आप विकसित होती चली जाती हैं। अगर देश साथ-साथ जियेगा तो धीरे-धीरे एक भाषा, आम बोल-चाल की भाषा विकसित हो जायगी। वह हिन्दुस्तानी होगी। उसमें सब भाषाओं के शब्द होंगे और वह हिंदी से ज्यादा बहुमूल्य होगी, समृद्ध होगी। क्योंकि सभी भाषाओं की धाराएं उसमें आकर मिल जायेंगी। वह अकेली हिंदी नहीं होगी, वह एक बिलकुल ही नई भाषा होगी। उस नई भाषा की दिशा में कदम उठाये जा सकते हैं। पहला कदम है—राष्ट्रभाषा की बात बन्द कर दें।

● **एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि देश की एकता के लिए क्या किया जाय। देश में नेशनल इन्टीग्रेशन, राष्ट्रीय एकता कैसे हो ?**

(३) देश का राजनैतिक विखण्डन राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के अनुकूल

उसमें कुछ बातें सोचनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि देश की सारी राजनीति देश को खण्ड-खण्ड बनाये रखने पर जीवित है और राजनी-

तिज्ञ ही बातें करते हैं कि राष्ट्र एक कैसे हो, गुजरात का राजनीतिज्ञ जिन्दा है, गुजरात की अलग इकाई पर। महाराष्ट्र का राजनीतिज्ञ जिन्दा है, महाराष्ट्र की अलग इकाई पर। मैसूर का राजनीतिज्ञ मैसूर की अलग इकाई पर जिन्दा है। मैसूर और महाराष्ट्र लड़ते रहेंगे कि एक जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में। और ऊपर दिल्ली में बैठकर विचार करेंगे वे ही लोग कि राष्ट्र की एकता कैसे हो। असल में **राजनीतिज्ञ लोकल, स्थानीय स्वार्थ पर जिन्दा है और राष्ट्रीय स्वार्थ की बात कर रहा है, इसलिए यह एकता सम्भव नहीं हो सकती है।**

यह एकता एक ही तरह से संभव हो सकती है कि देश में स्थानीय सरकारों को विदा किया जाय, सिर्फ केन्द्रीय सरकार हो, उसके अतिरिक्त देश की एकता नहीं हो सकती। देश में केन्द्रीय सरकार हो, लेकिन राजनीतिज्ञ पसंद नहीं करेंगे, क्योंकि फिर इतने गवर्नर कैसे होंगे, इतने मुख्य मंत्री कैसे होंगे, इतने मंत्री-उपमंत्री कैसे होंगे! थोड़े से लोगों के हाथ में सत्ता होगी तो इतने लोग सत्ताधिकारी होने का मजा नहीं ले सकेंगे। उनकी सत्ताधिकारी होने की इच्छा देश को खण्ड-खण्ड में तोड़ती चली जाती है। फिर तेलंगाना चाहता है कि अलग राज्य बन जाय, झारखण्ड चाहता है कि बिहार में अलग राज्य बन जाय, बरार चाहता है कि विदर्भ अलग राज्य बन जाय। क्योंकि राजनीतिज्ञ देखता है कि एक प्रदेश दो हिस्से में टूटे तो फिर दो मुख्यमंत्री होते हैं, दो मंत्रालय होते हैं, दो गवर्नर होते हैं। **राजनीतिज्ञों को उतनी ही ज्यादा सुविधा मिलती है देश जितने ज्यादा हिस्सों में टूटे। राजनीतिज्ञ का हित इस पर निर्भर है कि देश टूटता चला जाय** और फिर राजनीतिज्ञ ऊपर बैठकर बातें करता है कि राष्ट्र की एकता कैसे हो, सेमिनार बुलाता है, विचार करता है। यह विचार बेकार है, उससे कुछ हल नहीं हो सकता है। अगर देश को एक बनाना है तो देश में एक सरकार के अतिरिक्त और सरकारों की कोई जरूरत नहीं।

एक सरकार के होते ही लोकल हित समाप्त हो जायेंगे, स्थानीय हित समाप्त हो जायेंगे। फिर नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्यप्रदेश का, यह सवाल नहीं रहेगा। फिर नर्मदा का जल नर्मदा का होगा। अभी बहुत झंझट है। फिर कौन-सा जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, इस पर गोली नहीं चलेगी। क्योंकि जिले अपनी जगह हैं, अपनी जगह रहेंगे, वे पूरे देश के होंगे। **एक केन्द्रीय सरकार निर्मित होते ही देश एक होने लगेगा।**

हां, देश का विभाजन एडमिनिस्ट्रेशन के आधार पर होना चाहिए। ज़ोनल, चार टुकड़े हो जायं। 'जोनल एडमिनिस्ट्रेशन' की बात है, राजनीतिक विभाजन की बात नहीं है। इकाइयां हो जायं, जैसे रेलवे की इकाइयां हैं। रेलवे में कोई झगड़ा नहीं है कि वेस्टर्न रेलवे सेंट्रल रेलवे से युद्ध कर रही हो। एडमिनिस्ट्रेटिव विभाजन है। देश का विभाजन प्रशासनिक होना चाहिए राजनैतिक नहीं।

पॉलिटिकल विभाजन खतरनाक है और अगर पॉलिटिकल विभाजन चलता है, तो एक राज्य को हमें और छोटे राज्यों में तोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि छोटे राजनीतिज्ञ छुटभैयों के लिए क्या किया जाय ? उन्हें भी प्रधान मन्त्री और मुख्य मन्त्री और गवर्नर होना है। फिर उनको रोकने का कारण भी क्या है ? फिर गुजरात एक क्यों हो ? चार गुजरात क्यों न हों ? सौराष्ट्र अलग क्यों न हो ? आखिर सौराष्ट्र के भी राजनीतिज्ञ हैं, उनको भी मजा लेने का हक है। जबसे गुजरात बना, तबसे वे बेचारे पड़े परेशान हैं। वे मुझे मिलते हैं। मेरे कई मित्र हैं उनमें। वे बड़े परेशान हैं। जब सौराष्ट्र था तो उनमें कोई मुख्य मंत्री था, कोई मंत्री था, कुछ था। अब वे कुछ भी नहीं रह गए। तो उनकी चेष्टा होगी कि सौराष्ट्र अलग हो तो बुरा क्या है ?

मैं यह कहता हूं कि या तो फिर देश को टुकड़े-टुकड़े में तोड़ दें, एक-एक गांव में भी मिनिस्ट्री बना दें तो मामले का हल हो सकता है। फिर भी पक्का नहीं, क्योंकि मुहल्ले लड़ सकते हैं। मुश्किल है मामला ! राजनीति कहां रुकेगी कहना मुश्किल है। एक रास्ता तो यह है कि एक-एक पंचायत एक-एक मन्त्रालय हो जाय और या एक रास्ता यह है कि राष्ट्र की एक ही केन्द्रीय सरकार हो। एक केन्द्र होते ही देश के विभाजन की जो हमें शक्ल दिखाई पड़ती है वह विदा हो जायगी।

चर्चिल ने हिन्दुस्तान की आजादी मिलते वक्त एक दुखद भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था कि दे तो रहे हो आजादी इनको, लेकिन बीस साल में ये अपनी वही हालत कर लेंगे, जो अंग्रेजों द्वारा राज्य लेते समय मुसलमान साम्राज्य की थी। बाप बेटे को मार रहे थे, बेटे बाप को कैद कर रहे थे। सारा देश खंड-खंड बंट गया था। दिल्ली का सम्राट सम्राट कहलाता जरूर था, लेकिन आगरा भी वश में नहीं था। नाम ही रह गया था तब। सारा मुल्क खंड-खंड था। एक-एक सिपहसालार, एक-एक सेनापति अपना राज्य बनाकर बैठ गया था। चर्चिल ने कहा था कि बीस साल में हिन्दुस्तान के

राजनीतिज्ञ उसी हालत में भारत को पहुंचा देंगे जिस हालत में अंग्रेजों द्वारा मुसलमानों से राज्य लेते समय भारत था। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ उसकी भविष्यवाणी को पूरा करने को जी-जान से लगे हुए हैं। वे सब चेष्टा कर रहे हैं कि कहीं चर्चिल गलत न हो जाय। वे देश को खंड-खंड तोड़े चले जा रहे हैं।

निपट मूढ़ता की बातें हैं कि चंडीगढ़ कहां रहे। और गोलियां चलें, आदमी मरें इन छोटी-छोटी बातों पर। लेकिन उसका मूल कारण क्या है? मूल कारण है कि हम छोटे-छोटे सभी राजनीतिज्ञों को सत्ता का, अधिकार का रस देने की तैयारी दिखला रहे हैं और फिर वे ही लोग मिलकर कहते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो, तो बहुत कठिनाई हो जाती है। जैसे चोर मिलकर विचार करें कि देश में चोरी कैसे बन्द हो! सब एक दूसरे की तरफ देखकर हंसें, भाषण करें और विदा हो जायं। चोर कैसे देश में चोरी बन्द करवाने का विचार कर सकते हैं? हां, बातें कर सकते हैं ताकि पूरा देश सुन ले कि हम चोरी के खिलाफ हैं, ताकि चोरी करने में सुविधा हो जाय। अक्सर चोर ऐसा करते हैं। अगर कहीं चोर होगा जिसने चोरी की है, तो उसके बचने का सबसे सरल उपाय यह है कि वह जोर से चिल्लाने लगे चोरी के खिलाफ कि किसने चोरी की है, पकड़ो। तो उसको कोई न पकड़ेगा, क्योंकि इतना तो पक्का है कि इस आदमी ने चोरी नहीं की है। राजनीतिक चिल्लाते हैं कि देश की एकता चाहिए। खयाल में आता है कि इन बेचारों का कोई हाथ नहीं है, ये निर्दोष और मासूम हैं। पर इनका ही हाथ है। इन्होंने ही देश को खंड-खंड किया है। देश खंड-खंड कहां है? सिवाय राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के देश का खंड-खंड होना नहीं है।

(४) राष्ट्रीय एकता राजनैतिक स्वार्थों व जनता के पागलपन से मुक्त होने पर ही संभव

राजनीतिज्ञों को विदा करना पड़ेगा और छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों की, सबकी तृप्ति को रोकना पड़ेगा। देश में एक केन्द्रीय सरकार के निर्मित होते ही राष्ट्र एक बन जायगा।

देश का प्रशासनिक विभाजन होना चाहिए—जिले हों, प्रदेश हों, ज़ोन हों; लेकिन उनकी कोई अपनी राजनैतिक केन्द्रीय व्यवस्था न हो तो कोई खतरा नहीं है, कठिनाई नहीं है। अन्यथा मद्रास कल कहे कि मैं अलग होना चाहता हूं, तो रोकने का हक क्या है किसी को, या बंगाल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं तो रोकने का क्या हक है किसी को? **सत्ताएं जितने छोटे**

टुकड़ों के हाथ में इकट्ठी होती चली जायेंगी उतना ही देश खण्ड-खण्ड होता चला जायगा। देश इतना बड़ा है, यह हमारा सौभाग्य है, लेकिन देश के बड़े होने को हम दुर्भाग्य में भी बदल सकते हैं। छोटे-छोटे टुकड़े भी काफी बड़े हैं हमारे। उन टुकड़ों में भी हम तृप्त हो सकते हैं।

पहला खतरा हमने हिन्दुस्तान पाकिस्तान को बांटकर पैदा किया है। बंटवारा अब शुरू हो गया है। वह भी राजनीतिक बटवारा था, उसमें भी गहरे में राजनैतिक बंटवारे की बात थी। दो गवर्नर जनरल होने चाहिए, दो प्रधान मंत्री होने चाहिए, दो राष्ट्रपति होने चाहिए। वह मजा भी गहरे में राजनीतिज्ञों का था। और हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ निरंतर कहते रहे कि हम बंटने नहीं देंगे, हमारी लाश से बंटवारा होगा। वे सब जिन्दा रहे, किसी लाश पर से बंटवारा नहीं हुआ, बंटवारा हुआ आम आदमी की लाश पर और जो कहते थे बंटवारा हमारी लाश पर होगा, उन्होंने बंटवारे पर दस्तखत किए। क्यों किये दस्तखत ? कारण था, हिन्दुस्तान के सब राजनीतिज्ञ बूढ़े हो गए थे। बूढ़े राजनीतिज्ञ खतरनाक सिद्ध हुए। उनको लगा कि दो-चार-पांच वर्ष और आजादी की लड़ाई चलानी पड़े तो कम से कम हम राष्ट्र को मुक्त करने वाले न होंगे, कोई और होगा और हम सत्ता प्राप्त नहीं कर पायेंगे, कोई और करेगा।

हिन्दुस्तान जिद कर सकता था कि या तो स्वतंत्र होंगे तो अखंड या गुलामी ही बेहतर है, लेकिन खण्ड-खण्ड नहीं होंगे। लेकिन हिन्दुस्तान का राजनीतिज्ञ बूढ़ा हो गया था। बूढ़ों को डर था कि कहीं वे मर जाएंगे तो न मालूम किसके सिर पर सेहरा बंधे कि उसने आजादी ली। जल्दी में वे अपने मरने के पहले इन्तजाम कर लेना चाहते थे, अपने ऐतिहासिक मूल्य का। उन्होंने जल्दी में स्वीकार कर लिया। फिर इसके बाद एक पागल दौड़ शुरू हुई।

फिर हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ को गांधीजी कुछ हथियार दे गए हैं, जो बड़े खतरनाक हैं। वह सिखा गये हैं कि अनशन कर दो, सब ठीक हो जायगा। बस अनशन करो और बंटवारा करवा लो, अनशन करो और जो मांग पूरी करवानी हो वह करवा लो। हर आदमी को वे सिखा गये हैं कि अपने मरने की धमकी दो और फिर सब पूरा हो सकता है। तो जो भी मरने की धमकी दे सकता है वह देश को दो टुकड़ों में, किसी भी प्रदेश को दो टुकड़ों में बंटवा सकता है। बस मरने की धमकी चाहिए। इतना कमजोर

हमारा मन हो गया है कि हम किसी भी धमकी, बलवे, हिंसा, सब पर राजी हो जाते हैं।

नहीं, हिन्दुस्तान के छोटे राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान को खण्ड-खण्ड में बंटवा देंगे। इनसे बचने की जरूरत है। हिन्दुस्तान एक है, कृपा करके राजनीतिज्ञ बीच से हट जायं, तो हम पायेंगे कि हिन्दुस्तान एक है। वह बंटा कहां है? लेकिन बांटने वाले लोग ही कह रहे हैं कि देश बंट गया है और इसे एक करना है। इस एक करने की भाषा से ऐसा पता चलता है कि कम से कम ये बेचारे बंटवाने वाले नहीं हैं। राजनीतिज्ञ को अलग कर दें, तो देश कहां बंटा हुआ है? देश एक है।

कौन लड़वा रहा है? वह राजनीतिज्ञ लड़वा रहा है। बिना लड़वाये राजनीतिज्ञ के हाथ की ताकत कम हो जाती है। जब वह लड़वाता है तभी ताकत में होता है। जब एक जिले के लिए मैसूर और महाराष्ट्र लड़ते हैं, तो मैसूर के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और महाराष्ट्र के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है। और वे अपने वोटर को समझाते रहते हैं कि जिला हम लेकर रहेंगे और अगर जिला लेना हो तो मुझे मुख्य मन्त्री बनाओ, तभी जिला आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है। और मजा यह है कि जनता को जिला कहां रहता है, इससे क्या फर्क पड़ता है!

हिन्दुस्तान पाकिस्तान बंटा तो एक पागलखाना था दोनों मुल्क की सीमा पर। उसके बंटवारे का भी सवाल आ गया। अधिकारियों ने जाकर पागलों से कहा कि तुम कहां रहना चाहते हो— हिन्दुस्तान में या पाकिस्तान में? उन्होंने कहा, हम तो यहीं रहना चाहते हैं। अधिकारियों ने कहा, यह सवाल नहीं है, तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा। रहोगे तुम यहीं, लेकिन तुम यह बताओ कि हिन्दुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में? पागल बड़ी मुश्किल में पड़ गये। उन्होंने कहा, जब रहेंगे यहीं तो जाने का सवाल ही क्या है? अधिकारियों ने कहा, तुम समझते नहीं, यह बड़ी गहरी, गम्भीर बातें हैं। तुम तो यह बताओ कि तुम जाना कहां चाहते हो? उन्होंने कहा, हम जाना ही नहीं चाहते। अधिकारियों ने कहा घबराओ मत, रहना यहीं पड़ेगा; लेकिन फिर भी तुम कहां जाना चाहते हो? वे पागल कहने लगे, हम सोचते थे कि हम पागल हैं; आप कब से पागल हो गये हैं?

फिर तो रास्ता न मिला। पागलों को जब समझाया न जा सका कि रहोगे यहीं, लेकिन जाना कहां चाहते हो, हिन्दुस्तान में या पाकिस्तान में, तब

फिर यह हुआ कि बीच से पागलखाना बांट दिया गया। तब पागलखाने के दो हिस्से हो गये। एक हिस्सा हिन्दुस्तान में चला गया, एक हिस्सा पाकिस्तान में चला गया। बीच में एक दीवाल खींच दी गई। अब भी वह पागल कभी दीवाल पर चढ़कर एक दूसरे से बातें करते हैं और कहते हैं, बड़ी अजीब बात है, हम सब वहीं के वहींहैं, सिर्फ एक दीवाल बीच में आ गई है और हम हिन्दुस्तान में आ गये, तुम पाकिस्तान में। कुछ समझ में नहीं आता। **ये बाहर के पागल क्या करते रहते हैं, कुछ समझ नहीं आता।**

हम और छोटे-छोटे टुकड़ों में देश को बांटते चले जायेंगे। राजनीतिज्ञ की ताकत हमें पागल बनाने पर निर्भर है। जब वह हमें पागल बनाने में समर्थ हो जाता है तब उसमें ताकत आ जाती है। जब तक वह हमें पागल नहीं बना पाता तब तक वह निहत्था है, उसके हाथ में कोई शक्ति नहीं। लेकिन राजनीतिज्ञ हमको किसी भी चीज पर पागल बना सकता है— हिन्दू होने पर, मुसलमान होने पर, गुजराती भाषी होने पर, मराठी भाषी होने पर, ब्राह्मण होने पर, शूद्र होने पर—किसी भी तरह वह हमें पागल बना सकता है। राजनीतिज्ञ की ताकत हम किस मात्रा में पागल हो सकते हैं, इस पर निर्भर है।

अगर देश को एक करना है तो देश के पागल होने की क्षमता कम करनी पड़ेगी। हम छोटी-छोटी बातों पर इतने जल्दी पागल होते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। यदि किसी ने खबर कर दी कि धार्मिक रूप से पूज्य पशु की पूंछ कट गई, तो लोग पागल हो जायेंगे। अब उस पशु की अगर पूंछ कट भी गई हो, तो भी दो-चार लोगों को मरने और मारने की क्या जरूरत है, यह बात हमें समझ में नहीं आती। और हमारे बच्चे अगर कभी भविष्य में पढ़ेंगे, तो बहुत हंसेंगे कि हमारे बाप-दादे सब पागल थे ? पूज्य पशु की पूंछ कट गई तो हजारों लोगों के मरने-मारने की क्या जरूरत थी ! पूज्य पशु का इलाज करवा देना था, प्लास्टिक सर्जरी करवा देनी थी, उसकी पूंछ फिर से जुड़ सकती थी। लेकिन पशु की पूंछ पर यह हो सकता है। एक पत्थर की मूर्ति का हाथ कट जाय तो हजारों लोग मर सकते हैं—औरतों के स्तन काटे जा सकते हैं, बच्चों की हत्या की जा सकती है, लोगों को जलाया जा सकता है।

अगर हम इस तरह पागल होने को तत्पर हैं, तो यह देश इकट्ठा नहीं हो सकता। पागलपन तुड़वाता है और ध्यान रहे कि राजनीतिज्ञ जितनी दूर तक हमें पागल बना सकता है उतना ही शक्तिशाली रहेगा। जिस दिन हम

पागल बनने से इन्कार कर देंगे उस दिन एक बड़ी अद्भुत घटना घटेगी, हमको राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा। हमें दिखाई पड़ेगा कि यह क्या पागलपन की बातें चला रखी हैं। राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा अगर जनता थोड़ा स्वस्थ होने की कोशिश करे। राष्ट्र को एक करना हो तो जनता को स्वस्थ करना होगा। उसके पागलपन के बुनियादी कारण हटाने पड़ेंगे।

● **एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि कोई हिन्दू न रहे, कोई मुसलमान न रहे, फिर उनमें यदि शादी हो जायगी, तो क्या सब खून अशुद्ध नहीं हो जायगा, तब क्या सबका पतन नहीं हो जायगा ?**

(५) वर्ण-भेद, जाति-भेद और धर्म-भेद का पागलपन

अब यह पागलपन की बातें हैं। खून सभी शुद्ध होता है—हिन्दू का भी और मुसलमान का भी। एक मुसलमान का खून निकालकर लेबोरेटरी में ले जायें और अगर कोई डाक्टर बता दे कि यह मुसलमान का खून है तो आश्चर्य समझना। बताया नहीं जा सकता कि हिन्दू का है, कि मुसलमान का है, कि ईसाई का है, कि ब्राह्मण का, कि शूद्र का। खून सिर्फ खून है। खून शुद्ध और अशुद्ध नहीं होता, चमड़ी शुद्ध और अशुद्ध नहीं होती, हड्डियां शुद्ध और अशुद्ध नहीं होतीं। दो हड्डियां निकालकर जांच नहीं की जा सकती कि ब्राह्मण की शुद्ध हड्डी कौन-सी है और भंगी की अशुद्ध हड्डी कौन-सी है। खून से कोई शुद्धता का सम्बन्ध नहीं है। और आश्चर्य की बात है कि जितने निकट का खून होता है उतने ही अस्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं जितना ही दूर का खून होता है उतने ही स्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं। हम मानते भी हैं यह सामान्यतः।

अपनी बहन से हम शादी नहीं करते हैं। क्यों ? क्या तकलीफ है ? एक ही तकलीफ है कि खून बहुत करीब है और करीब खून से उतना टेंशन पैदा नहीं होता कि बच्चा स्वस्थ हो सके, इसलिए दूर शादी करते हैं। बचाते हैं कि बहन से शादी न हो जाय, फासले पर शादी करते हैं। अगर बहन से शादी करने में बचाव करते हैं, तो क्या उचित न होगा और फासले पर शादी करने से और स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे ? अब तो प्राणि-शास्त्री जानते हैं कि क्रास-ब्रीडिंग का कितना बेहतर परिणाम है। एक अंग्रेज सांड़ को ले आयें और देशी गाय से दोस्ती करवा दें आज तो जो बच्चा पैदा होगा, वह देशी बैल से कभी पैदा नहीं हो सकता। इतने फासले की जब ब्रीडिंग होती है तो स्वस्थ जानवर पैदा होते हैं। आदमी के साथ भी नियम वही है। **जितने फासले का सम्बन्ध होगा उतने स्वस्थ लोग पैदा होंगे।**

हिन्दू-मुसलमान का सम्बन्ध ज्यादा अच्छा है बजाय हिन्दू और हिन्दू के। हिन्दू और चीनी का सम्बन्ध ज्यादा बेहतर है बजाय हिन्दू और हिन्दू के। एशिया के रहने वाले का सम्बन्ध योरोप के निवासी से ज्यादा बेहतर है बजाय एशिया के भीतर। और अगर किसी दिन हमने चांद-तारों पर कोई जाति खोज ली, तो **इन्टरप्लेनेटरी विवाह** जितने अच्छे होंगे उतने और कहीं नहीं हो सकते हैं, क्योंकि उस प्लेनेट (ग्रह) पर करोड़ों वर्षों से जो विकास हुआ होगा और इस प्लेनेट पर जो विकास हुआ है, अगर एक लड़की और लड़का हिम्मत करके शादी कर लें, तो ये दोनों विकास की धाराएं मिलकर जिस बच्चे को पैदा करेंगी, वह दोनों विकास की धाराओं का वंशज होगा। वह उतनी ही कीमती व समृद्ध बुद्धि और शरीर लेकर पैदा होगा।

मगर हमें पागल बनाने की तरकीबें हैं कि शुद्ध खून खोजना चाहिए। शुद्ध खून का कोई मतलब नहीं होता है। **बीमार खून और स्वस्थ खून होता है, लेकिन शुद्ध और अशुद्ध खून नहीं होता है।** कोई खून शुद्ध नहीं है खून की तरह, सभी शुद्ध हैं या सभी अशुद्ध हैं।

चमड़ी के—**गोरी चमड़ी और सफेद चमड़ी** के फासले बनाये हुए हैं। पता है, यह फासला कितना होता हैं ? एक पिगमेंट होता है छोटा-सा जो काली चमड़ी को काला बना देता है— मुश्किल से एक छटांक का चौथाई हिस्सा। उतना पिगमेंट जिसके शरीर में होता है उसकी चमड़ी काली हो जाती है, उतना नहीं होता है तो गोरी हो जाती है। वह जो चौथाई छटांक का हिस्सा है पिगमेंट का, वह भी इसलिए है कि ज्यादा और कम धूप भीतर ले जायी जा सके। काली चमड़ी इसलिए है कि जहां बहुत धूप है वहां चमड़ी धूप को भीतर न जाने दे। काली चमड़ी सुरक्षा करती है, भीतर धूप को नहीं जाने देती है। सफेद चमड़ी सर्द ही जगह हो तो ठीक है, गर्म जगह हो तो बड़ी मुश्किल है। वह धूप को भीतर घुस आने देती है और मुश्किल में डाल देती है। और चमड़ी में कुछ ऊंचा और नीचा नहीं है। आप बाहर निकलते हैं, काला छाता लगाकर, सफेद छाता लगाकर नहीं निकलते। क्यों ? सफेद छाते बेमानी हैं, क्योंकि काला छाता रोशनी को रोकने का काम करता है, किरणों को सोख लेता है, हीट-रेज़िस्टेन्ट होता है। सफेद छाता कुछ किरणों को पार हो जाने देता है। उस काले छाते में काला पिगमेंट है जो किरणों को सोख लेता है। वह काला छाता हम लगाते हैं बिना फिक्र किये कि काला क्यों लगायें, सफेद लगायें। सफेद छाता बहुत अच्छा होगा, लेकिन धूप में काला छाता ही बेहतर है। जहां

मुल्क गर्म है, श्रम करने वाले लोग हैं, जिन्हें दिन भर धूप में रहना हो, उनकी चमड़ी अगर काली न होगी तो वे जिन्दा नहीं रह सकते—धूप बरदाश्त नहीं कर सकते।

और फिर किसने कहा कि काली चमड़ी सुन्दर नहीं होती है ? **काली चमड़ी का अपना सौंदर्य है, सफेद चमड़ी का अपना सौंदर्य है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है।** हमने कृष्ण को काला बनाया है। कृष्ण का मतलब ही है— काला, सांवला। और हमने काला इसलिये बनाया है कि हमने काले रंग के रहस्य को भी समझा है। सच बात यह है कि गोरे रंग में एक विस्तार होता है, लेकिन गहराई नहीं होती है। काले रंग में एक गहराई—डेप्थ—होती है, जो गोरे रंग में नहीं होती है। गोरे रंग में एक हमला होता है, गोरा रंग एग्रेसिव है, हमलावर है। अगर सड़क से गोरा रंग निकल जाय तो हमें देखना ही पड़ता है, वह आक्रामक है, हिंसात्मक है। **काला रंग अनाक्रामक है,** वह हमला नहीं करता है। आपको देखना हो तो देखें, प्रतीक्षा करता है, 'वेट' करता है, अहिंसात्मक है वह काला रंग, हिंसा नहीं करता है।

देखा है, नदी जब गहरी हो जाती है तब सांवली हो जाती है, उथली होती है तो सफेद हो जाती है। गहराई आ जाती है नीले रंग में। आकाश नीला दिखाई पड़ता है बहुत गहराई के कारण और कोई कारण नहीं है। काले रंग में एक गहराई है।

काले रंग का अपना सौंदर्य है, सफेद रंग का अपना सौंदर्य है। लेकिन कौन कहता है कि सफेद अच्छा और काला बुरा है ? जब कोई ऐसा कहता है तो भूल भरी बातें करता है, गलत बातें करता है। और इस तरह से पागलपन पैदा होता है।

अमेरिका में पागलपन है कि नीग्रो को मारो, क्योंकि वह काला है। बड़ी अजीब बात है! हिन्दुस्तान में भी वही बात है। हमने तो वर्ण की जो व्यवस्था की वह 'कलर' पर निर्भर है। वर्ण का मतलब रंग। असल में काले रंग के लोगों को हमने शूद्र बना दिया है, नीचे धक्का दे दिया। वह भी रंग के आधार पर तय हुआ था। गोरी चमड़ी के लोग ऊपर बैठ गये, वह ब्राह्मण हो गये, क्षत्रिय हो गये, वैश्य हो गये। काली चमड़ी के लोगों को उन्होंने धक्के देकर शूद्र बना दिया कि छूने योग्य नहीं है। वह रंग का ही विभाजन था, लेकिन रंग से कोई सम्बन्ध है ? काले रंग का अपना आनंद है, सफेद रंग का अपना। फिर स्वाद-स्वाद की बात है। किसी को काला रंग अच्छा लग सकता

है, किसी को सफेद रंग, लेकिन इसमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं है । यह सब पागलपन हमें छोड़ने पड़ेंगे ।

वर्ण का पागलपन हमें छोड़ना पड़ेगा, जाति का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, धर्म का पागलपन छोड़ना पड़ेगा तो देश राजनीतिज्ञ के हाथ से अभी मुक्त हो जायेगा । और देश अगर राजनीतिज्ञ के हाथ से मुक्त हो जाय तो देश सदा एक है, बंटा कहां है देश ? सच तो यह है कि **अगर सारी दुनिया राजनीतिज्ञों से मुक्त हो जाय तो पूरी मनुष्यता एक है** । इसलिए मुझसे यह मत पूछें कि देश को एक कैसे करें । मैं आपसे कहना चाहता हूं कि देश को अनेक करने की तरकीबें भर पहचान लें और उन तरकीबों में न फंसें, देश एक हो जायगा । जैसे मैंने यह मुट्ठी बांधी और किसी से जाकर पूछूं कि यह मुट्ठी कैसे खोलूं, तो वह आदमी कहेगा कि खोलने का कोई सवाल ही नहीं । कृपया बांधें मत, मुट्ठी अपने से खुल जायेगी । मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता है, बांधना पड़ता है । बांधना क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है, शब्द में मालूम होता है कि खोलना क्रिया है । खोलना स्वभाव है ।

एक होना मनुष्य का स्वभाव है, बांटना, खण्डित होना हमारी तरकीब है । बहुत व्यवस्था और मेहनत से बंटना पड़ता है । अगर हम न बंटें तो हम एक तो अभी हो जायेंगे । अगर मैं अपनी लड़की को न समझाऊं कि तू हिंदू है और मेरा पड़ौसी अपने लड़के को न समझाये कि तू मुसलमान है, तो उनको प्रेम से रोकने वाला कोई न होगा । वे आपस में पास आ सकते हैं और प्रेम कर सकते हैं । लेकिन मैं समझा रहा हूं कि तू हिन्दू है और उसका पिता समझा रहा है कि तू मुसलमान है । हम दीवालें खड़ी कर रहे हैं बीच में । लड़की और लड़के के बीच हम फासला खड़ा कर रहे हैं, वे करीब न आ सकेंगे, उनके बीच एक सख्त दीवाल खड़ी हो गई है । नहीं, यह मत पूछिए कि एक कैसे हों ; इतना ही पूछिये कि अनेक कैसे हो गये । और अनेक होने की तरकीब समझ लीजिए और उससे मुक्त हो जाइये । एकता स्वाभाविक रूप से फलित हो जायगी ।

मनुष्य एक है । शैतानों ने उसे अनेक किया हुआ है । वे बड़े मेहनती हैं । शैतान सदा से मेहनती हैं । भारी श्रम करके अनेक करते हैं । वे दिन-रात चेष्टा में लगे हैं कि आदमी को कैसे तोड़ें । और जब शैतान देखता है कि अब तोड़ना ज्यादा हो गया है कि आदमी घबराता है, तो शैतान ही नई शकल लेकर कहता है कि सब एक हो जाओ । हिन्दू-मुसलमान सब भाई बन जाओ ।

वह देखता है कि अब तोड़ा नहीं जा सकता है आगे, तो जानता है कि एक करने की बात करो। थोड़ा लोग रिलेक्स (शिथिल) हो जायं फिर तोड़ो।

● **एक सज्जन ने पूछा है कि हिन्दू और मुसलमान एक क्यों नहीं हो सकते हैं ?**

(६) हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि के लेबलों से मुक्ति चाहिये

हिन्दू हैं, मुसलमान हैं इसीलिए एक नहीं हो सकते। **आदमी आदमी एक हो सकता है, हिन्दू-मुसलमान एक नहीं हो सकते।** वह हिन्दू-मुसलमान होने का बोध ही उन्हें दो कर रहा है और अगर वे चेष्टा करके कभी एक भी हो जायं, जैसा कभी-कभी होता है—गले मिलने का भी इंतजाम करते हैं लोग कि हिन्दू-मुसलमान गले मिल रहे हैं, फोटो उतर जाती है, वे अखबार में छप जाते हैं—बस, इससे ज्यादा कोई तुक भी नहीं होता। वह जो गले मिले थे, दूसरे दिन फिर छुरा खींच लेते हैं।

वह जो एक होने की बात है, उसकी बुनियाद में ही अनेक को हमने स्वीकार कर रखा है। हम हिन्दू को हिन्दू मानते हैं, मुसलमान को मुसलमान मानते हैं, यह बड़े मजे की बात है। क्या कोई बच्चा हिन्दू की तरह पैदा होता है और कोई बच्चा मुसलमान की तरह पैदा होता है ? बच्चे सिर्फ आदमी की तरह पैदा होते हैं। पुरानी पीढ़ी उन्हें बिगाड़ने का उपाय करती है और सिखाना शुरू करती है कि तुम यह हो। उनके मन में प्रारंभ से ही जहर घोलना शुरू हो जाता है, जो बड़े होते-होते उनको पक्की तरह से हिन्दू, मुसलमान बना देता है। अगर मैं हिन्दू हूं और मेरे घर में एक बच्चा पैदा हो और उसे मुसलमान के घर दे दूं और वह मुसलमान के घर बड़ा हो, तो क्या अपने आप वह बच्चा कभी भी पता लगा पायेगा कि वह हिन्दू है ? कोई उपाय ही नहीं। उस बच्चे को कभी भी पता नहीं चलेगा, क्योंकि बच्चा कोई होता ही नहीं—न हिन्दू, न मुसलमान। **बच्चा तो खाली आता है, बिना लेबल के। लेबल हम लगाते हैं।** बच्चा कोई लेबल लेकर नहीं आता है, सिर्फ आदमी की तरह आता है और **लेबल लगाने से उपद्रव शुरू हो जाते हैं।** नहीं, लेबल लगाने बंद करने पड़ेंगे। जो बाप अपने बेटे को प्रेम करता हो, कृपा करके उस पर लेबल न लगाये। मगर हम यह तय कर लें कि हम अपने बच्चे को लेबल नहीं लगायेंगे और लगे लगाये लेबल को उखाड़ फेंक दें, तो कौन है जो हमें अलग करेगा ! कोई हमें अलग करने को नहीं है।

इसका यह मतलब नहीं कि मैं कहता हूं कि आप गीता न पढ़ें, कुरान न पढ़ें। मैं मुसलमान नहीं हूं, मैं कुरान पढ़ता हूं। मैं हिन्दू नहीं हूं, मैं गीता पढ़ता हूं। मैं ईसाई नहीं हूं, मैं बाइबिल पढ़ता हूं। मुझे कौन रोकता है ? सच बात तो यह है कि जब मैं कोई न रह जाऊंगा तो निष्पक्ष मन से गीता, कुरान, बाइबिल तीनों को पढ़ सकूंगा। जब तक मैं मुसलमान हूं, तब तक मैं कुरान एक ढंग से पढ़ता हूं और गीता दूसरे ढंग से पढ़ता हूं। जब तक मैं हिंदू हूं तब तक गीता मैं पवित्र ढंग से पढ़ता हूं; और कुरान को ऐसे पढ़ता हूं, जैसे स्टैप मदर (सौतेली मां) दूसरे के बेटे को देखती है—'स्टेपमदरली' ढंग से पढ़ता हूं। उसको मैं ऐसे नहीं पढ़ता, जैसे गीता को पढ़ रहा हूं।

नहीं, जिस दिन मैं कोई नहीं हूं उस दिन मैं सबको पढ़ूंगा। **उस दिन सारी दुनिया की संस्कृति का, सारा अतीत का मैं वारिस हो जाऊंगा।** अभी मैं सारी दुनिया की संस्कृति का वारिस नहीं हूं। अभी मैं एक धारा का वारिस हूं। जब मैं सारी दुनिया का वारिस हो जाऊंगा तब जीसस से मुझे कुछ सीखना है तो मुक्त हूं और मुहम्मद से कुछ सीखना है तो मैं बंधा नहीं हूं और कृष्ण से मुझे कुछ सीखना है तो मेरे मन के द्वार खुले हैं। मैं सबसे सीख सकूंगा, सारी दुनिया का सारा अनुभव मेरा हो जायेगा।

क्या हमारे बच्चे ज्यादा समृद्ध न हो जायेंगे अगर वे आदमी हो जायं ? नहीं, हम उन्हें दरिद्र बनाते हैं, क्योंकि हम उन्हें हिन्दू बना देते हैं, मुसलमान बना देते हैं। **हमारा लेबल का मोह इतना गहरा है कि हम उसके कारण करीब-करीब अंधे हो जाते हैं,** हम दूसरे की तरफ कभी देखते ही नहीं।

अब **जीसस** जैसे प्यारे आदमी को पढ़ने से हम वंचित रह जायेंगे, क्योंकि हम ईसाई नहीं हैं। जीसस जैसा आदमी बहुत अद्भुत है। उनसे जो वंचित रह गया, वह दुनिया के बहुत बड़े महत्वपूर्ण ढंग से वंचित रह गया। मुहम्मद की अपनी शान है। जो उनसे वंचित रह गया, वह एक बहुत प्यारे आदमी को जानने से वंचित रह गया। जिसने कृष्ण को नहीं जाना, वह चूक गया एक हीरे से, जो मुफ्त में मिल सकता था। जो **महावीर** को प्रेम नहीं करता, उसकी जिंदगी में, उसकी आत्मा में कुछ कमी रह जायगी। जिसने बुद्ध के चरणों में बैठकर थोड़ी देर राहत की सांस न ली, उसकी शांति में कुछ कमी रह जायगी। और मजा यह है कि इनमें से जो एक दे सकता है, वह दूसरा नहीं दे सकता। **वे सब युनीक हैं, वे सब बेजोड़ हैं।** बुद्ध कुछ और दे सकते हैं, मुहम्मद कुछ और, जीसस कुछ और, जरथुस्त्र कुछ और। लेकिन अब तक

हमने अपने बच्चों को एक धारा से जोड़कर बाकी दुनिया की धाराओं से उसे वंचित किया है। भविष्य में एक नागरिक पैदा करना है जो विश्व का नागरिक हो।

हमें धर्मों से, जातियों से, रंगों के पागलपन से मुक्त होना पड़ेगा और तब हम एक हैं। एक होना हमारा स्वभाव है। अनेक हम किए गए हैं तरकीबों से। तरकीबों से हम सावधान हो जायं, तो हमें एक होने से कोई भी नहीं रोक सकता।

(७) भारत में पाश्चात्यीकरण नहीं—आधुनिकीकरण जरूरी

● एक दो प्रश्न और हैं। एक मित्र ने पूछा है, वह भी एक जीवित सवाल है। हिन्दुस्तान में **साधु-संन्यासी** और सज्जन जिनको हम कहते हैं, वे सब **आधुनिकता के विपरीत हैं**। वे कहते हैं, आधुनिक हुए तो अपना सब खो जायगा, भारतीय न रह जायेंगे, अतीत की जो सम्पदा है, वह खो जायगी। वे कहते हैं, आधुनिक होने से बचना, अन्यथा अपनी संस्कृति खो जायेगी।

असल में जो संस्कृति जिंदा होती है, वह आधुनिक होकर ही बचती है, आधुनिक होकर खोती नहीं। **जिस संस्कृति को मरना हो, वही आधुनिक होने से बच सकती है।** जैसे मैंने कल भी सासें ली थीं और अगर मैं यह सोचूं कि आज भी वही सांस लूंगा, तो कल वाला आदमी मर जायगा, तो मैं फिर मरूंगा। मुझे आज सांस लेनी पड़ेगी तो मैं जिंदा रह सकता हूं। **आधुनिकता का मतलब है — आज वर्तमान में सांस लेने की क्षमता।** और जिंदगी रोज बदलती है, जिंदगी को रोज आधुनिक होना पड़ता है, जिंदगी को रोज नये वातावरण, नये माहौल से समायोजित होना पड़ता है।

भारत एक कसम लेकर बैठ गया है कि हम सब पक्के वही रहेंगे, जो हम पीछे थे—हम तो अपनी चोटी बढ़ाकर ही रखेंगे, नहीं तो भारतीय नहीं रह जायेंगे— हम तो जनेऊ पहनेंगे ही, नहीं तो भारतीय नहीं जायेंगे। यह छोटे-मोटे भारतीय का मामला नहीं है, जिनको हम 'बड़े-बड़े' भारतीय कहते हैं, उनकी बुद्धि भी उतनी ही छोटी होती है। इसमें कोई बड़ा फर्क नहीं होता है। मदन मोहन मालवीय जैसे आदमी अंग्रेज से हाथ मिलाने में डरते थे कि कहीं अपवित्र न हो जायं। **जो कौम इतनी घबराई हुई हो जायगी कि किसी से हाथ न मिला सके तो उस कौम का कोई भविष्य नहीं हो सकता।**

इंग्लैंड गये थे मालवीयजी गोलमेज कांफ्रेंस में, तो गंगा जल साथ ले गये थे पीने के लिए। टेम्स नदी का जल जो है, वह भगवान का बनाया हुआ

नहीं है। क्या गंगा का जल ही भगवान ने बनाया है ? वह गंगा का जल उनको जाता रहा पीने के लिए। क्या पागलपन है ! ऐसी कौम जिंदा नहीं रह सकती है। वे शंकर जी की पिंडी छिपाये हुए थे पगड़ी के भीतर, ताकि शंकर जी रक्षा करते रहें, कोई अपवित्र छू न जाय। ऐसे आदमी के साथ शंकरजी भी अपवित्र हो जायेंगे। जो ऐसा अपवित्रता से डरा हुआ है, वह जिंदा कैसे रहेगा ! यह आदमी जिंदा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है, **पूरी कौम हमारी ऐसी हो गई है। हम डरे हुए हैं और हम अपनी प्राचीनता को किसी भी तरह घसीटने के लिए कुछ भी दलीलें दिए चले जाते हैं।**

मैंने एक किताब पढ़ी। एक सज्जन ने वह किताब लिखी है। हिन्दू धर्म वैज्ञानिक है, यह उसने सिद्ध किमा है। उसने बड़े मजे की बात लिखी है, कितने मजे की बातें कि पश्चिम के वैज्ञानिकों को पता चल जाय तो उनको भी बड़ा लाभ हो। उसने लिखा है, हमने चोटी क्यों बढ़ाई, उसके वैज्ञानिक कारण हैं। जैसे कि हम मकानों के ऊपर लोहे के डंडे लगाते हैं बिजली गिराने को, जिससे बिजली का असर न हो। हम बड़े वैज्ञानिक थे। हमने चोटी बांधकर खड़ी कर ली थी, जिससे बिजली पार हो जाय। वह हमारी चोटी की वैज्ञानिकता सिद्ध कर रहे हैं।

हम सारी दुनिया में अपने को हंसी योग्य सिद्ध कर लेने में लगे हैं। हम पागलपन में लगे हैं, इस भांति हम जिंदा न रह सकेंगे। एक किताब में लिखा है कि खड़ाऊं हिन्दू क्यों पहनते हैं। एक नस दब जाती है पैर की। उस नस के दबने के कारण आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। वैसी नस को पैर से काट ही डालो तो बड़ा ही अच्छा हो जाय। उसको दबा ही दो। अब तो दबाने के बड़े उपाय है, खड़ाऊं पहनने की जरूरत नहीं है। नस को दबा ही दो, नसबंदी बहुत अच्छी होगी ! इस तरह की नसबंदी बहुत अच्छी हो जायगी, बर्थ-कंट्रोल के लिए बड़े फायदे की होगी।

हम अपनी व्यर्थता को भी आधुनिक ढांचा पहनाने में उत्सुक हैं। नहीं, जो व्यर्थ है उसे छोड़ना पड़ेगा और अगर उसे नहीं छोड़ते तो उसके साथ हम मूढ़ बनते जाते हैं। सारे जगत में हंसने योग्य हुए चले जा रहे हैं। हम व्यर्थ ही अपने आप हंसने योग्य बनने की कोशिश में लगे हुए हैं। **हमें आधुनिक होना पड़ेगा।** आधुनिक होना जीवन का धर्म है। आधुनिक होने का मतलब है कि जो है जिंदगी, हमें उसके योग्य होकर खड़े होना पड़ेगा। आधुनिक होने का मतलब पाश्चात्यीकरण (मार्डनाइजेशन) नहीं है। **पाश्चात्यीकरण की कोई**

जरूरत नहीं है, लेकिन आधुनिकीकरण तो करना ही पड़ेगा। जिंदगी को सब तरफ से नया करना पड़ेगा। नहीं करेंगे तो हम मरेंगे। किसी और को उससे नुकसान नहीं होगा।

● एक मित्र ने पूछा है कि साधु-संन्यासी सदा फिल्मों के विरोध में हैं, तो आपका क्या कहना है ?

(८) अश्लील फिल्मों से नहीं— अश्लील चित्त से मुक्ति चाहिये

यह अंतिम प्रश्न है। इस सम्बन्ध में बात कर लेनी उचित है, क्योंकि इधर भारत में ऐसा समझा जा रहा है कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़े जा रहे हैं, यह बिलकुल उलटी बात है। **बिगड़े हुए लोगों की वजह से अच्छी फिल्में बनानी मुश्किल हो रही हैं।** फिल्म की वजह से कोई नहीं बिगड़ रहा है। कोई फिल्म किसी को बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन लोग अगर बिगड़े हैं तो अच्छी फिल्म को चलाना मुश्किल है। और फिल्म एक अर्थ में बहुत बड़ा काम कर रही हैं कि जो काम आप करना चाहते हैं, और नहीं कर पाते, उसे फिल्म में देखकर राहत मिल जाती है और शांति से घर लौट आते हैं। अगर फिल्में न हों तो यह काम आप सड़कों पर खड़े होकर करेंगे और उपद्रव बढ़ेगा, कम नहीं होगा। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। अगर डिटेक्टिव फिल्म में हत्या की कोई घटना हो और अपराधी की कार के पीछे पुलिस लगी हो, तो आपने देखा है कि फिल्म देखने वाले सारे लोगों की रीढ़ सीधी हो जाती है, फिर कोई कुर्सी से टिका नहीं रह जाता। उनके भीतर भी कुछ हो रहा है, वे भी तैयार हो गए हैं, जैसे कि कार की स्टेयरिंग पर वे खुद ही बैठे हों। उनके हाथ-पैर तैयार हो गए हैं, सांस बंद हो गई है, पलकों ने झपकना बन्द कर दिया है। कहीं एक क्षण चूक न जाये तो चूक जायं। इस फिल्म में उनके भीतर जो उत्तेजना की आकांक्षा है, वह तृप्त हो जाती है। अगर फिल्में अलग कर दी जायं तो यह उत्तेजना हमें और रास्तों से लानी पड़ेगी।

विनोबा जी, आचार्य तुलसी और इस तरह के लोग फिल्मों के बड़े विरोधी हैं। वे कहते हैं फिल्में अश्लील हैं। अश्लील फिल्में नहीं बननी चाहिए। और मैं आपसे कहता हूं कि **अश्लील फिल्मों के कारण आदमी कम अश्लील है।** अगर फिल्में अश्लील न हों तो आदमी को अश्लील होना पड़ेगा। और कौन कहता है कि फिल्मों की वजह से अश्लीलता है ! कालिदास ने तो फिल्म नहीं

देखी थी, जहां तक मेरा खयाल है। लेकिन अगर उनके नाटक पढ़ें तो आज की कोई फिल्म उतनी अश्लील नहीं है जितना कालिदास रहे हैं। कालिदास जंगल में भी जायं, तो फलों में उन्हें फल नहीं दिखाई पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही दिखाई पड़ते हैं। तो क्या यह दिमाग फिल्म से लिया गया था ? कालिदास का दिमाग फिल्म ने खराब किया था ? खजुराहो के मंदिरों को कोई फिल्म एक्टरों ने खोदा है ? खजुराहो के मंदिरों पर मैथुन के चित्र किसने खोदे हैं ? यह तो आज के नहीं हैं। कामसूत्र किसने लिखा है ? यह तो आज का नहीं है। और भर्तृहरि के शृंगारशतक किसने रचे हैं ? यह तो इसमें फिल्म प्रोड्यूसर का कोई भी हाथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदमी जो चाह रहा है हमेशा से, वह अलग-अलग माध्यम में उसे देना पड़ा है। **आदमी बदले तो बदलाहट हो सकती है, माध्यम बदलने से कुछ नहीं हो सकता।** अब वे कहते हैं कि नग्न तस्वीरें न हों, लेकिन आदमी नग्न तस्वीरें देखना चाहता है।

मैं दिल्ली में था। साधुओं ने एक सम्मेलन किया था, अश्लील पोस्टरों के खिलाफ। भूल से वे मुझे बुला ले गए, क्योंकि लोग भूल से मुझे बुला लेते हैं तब पीछे बहुत पछताते हैं। उन्होंने समझा, अश्लील पोस्टर के खिलाफ हूं। अश्लील पोस्टर के खिलाफ कौन नहीं बोलेगा ! तो मैं बड़ा हैरान हुआ। मैंने उन साधुओं से कहा कि पहली बात तो यह है कि आप साधु हो, आप अश्लील पोस्टर देखने गये क्यों ? आप किसलिए गए ? तुम्हें किसी ने बुलाया था अश्लील पोस्टर देखने को ? तुम किसलिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो ? तुम्हें किसलिए परेशानी है ? उन्होंने कहा कि हम तो इसलिए देखने जाते हैं कि लोग उनको देखकर बिगड़ न जायं। अगर आप सिनेमा में पकड़े जायं और आप विद्यार्थी हैं, तो आपका शिक्षक आपको समझायेगा; और अगर शिक्षक पकड़ा जाय, तो वह कहेगा कि हम देखने आये थे कि कौन-कौन विद्यार्थी आये थे। बड़े मजे की बात है। ये साधु आदमी पोस्टर देखने जाते हैं, बेचारे कृपा करके, ताकि दूसरे लोग न बिगड़ जायं और सच बात यह है कि साधु जितना नग्न तस्वीरें देखना चाहते हैं उतना कोई भी नहीं देखना चाहता, क्योंकि साधु ने जिंदगी से अपने को तोड़ लिया है। उसकी आकांक्षायें भीतर दबी रह गई हैं।

मैंने एक घटना वहां सुनाई कि एक संन्यासी मेरे पास मेहमान थे। वे संन्यासी जब मेरे पास रहे दो-चार दिन, निकट से बातें की तो वे सच्चा बोल सके। **साधुओं से सच्ची बातें निकलवानी बहुत मुश्किल है, क्योंकि उन्हें झूठी**

जिन्दगी जीनी पड़ती है। वे सच्ची बात नहीं कह सकते। मेरे पास रहे, तो उनको लगा कि नहीं, सच्ची बात कही जा सकती है। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि मैं नौ साल का था तब मैं साधु हो गया। मेरे पिता दीक्षित हुए और घर में कोई न था। मां मर गई थी, इसलिए पिता दीक्षित हुए होंगे। स्त्रियां जिंदा रहें तो भी साधुता की प्रेरणा देती हैं और मर जायें तो भी। जिन्दा स्त्रियों से भी कई लोग भागकर साधु होते हैं और कुछ लोग मरी हुई स्त्रियों की वजह से साधु होते हैं।

पिता साधु हो गए, क्योंकि मां मर गई। अब बेटा कहां जाय, तो उन्होंने उसे भी दीक्षा दे दी। अब उन संन्यासी की उम्र ५२ वर्ष है, लेकिन उनकी बुद्धि नौ वर्ष पर रुक गई है उससे आगे नहीं बढ़ी। बढ़ नहीं सकती, क्योंकि जिंदगी से टूटकर अलग खड़े हो गये। तो उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे मन में सदा होता है कि सिनेमा टॉकीज से बाहर इतनी भीड़ रहती है, भीतर होता क्या है ? कभी मैं भीतर नहीं गया और आपसे मैं दिल की बात कह सकता हूं। क्या ऐसा नहीं हो सकता किसी तरकीब से कि मैं टॉकीज के भीतर जाकर एक दफा देख लूं कि वहां हो क्या रहा है ? इतनी भीड़ लगी रहती है। मंदिर के सामने तो क्यू लगती नहीं, कोई आता ही नहीं। यहां तो मुश्किल से टिकट मिलता है, फिर भीतर जाते हैं !

हमें समझ में नहीं आयेगी उनकी तकलीफ, क्योंकि हमने भीतर जाकर देखा है। उनकी तकलीफ वही समझ सकेंगे। मैंने कहा, मैं भिजवा देता हूं। पड़ोस से एक मित्र को बुलवाया। उन्हीं की जाति के वे संन्यासी थे। उन मित्र से मैंने कहा, मुझे तो तीन घंटा खराब करने का समय नहीं है, आप इन्हें किसी फिल्म में ले जायं। उन्होंने कहा, माफ करिये, अगर किसी ने मुझे देख लिया कि साधु महाराज को फिल्म दिखला रहा हूं, तो मैं तो परेशानी में पड़ जाऊंगा। उन्होंने कहा कि मैं केन्टोनमेंट एरिया में ले जा सकता हूं, वहां मेरी जाति का कोई भी नहीं है। मगर वहां अंग्रेजी फिल्म चलती है। साधु अंग्रेजी नहीं जानते। पर उन साधु ने कहा, कोई हर्ज नहीं, देख तो लेंगे, समझेंगे नहीं तो कोई बात नहीं। वह बेचारे जब रात अंग्रेजी फिल्म देखकर लौटे तो उनके मन से जैसे बोझ उतर गया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं हल्का हो गया। मेरे मन में मोक्ष जाने की इतनी आकांक्षा न थी जितनी टॉकीज के भीतर जाने की थी। अगर मैं मर जाता इसी आकांक्षा को लेकर,

तो पता नहीं टॉकीज में डोर-कीपर (द्वारपाल) की जगह पैदा होता अगले जन्म में, या क्या होता ?

मैंने उन संन्यासी से कहा, आप क्यों परेशान हैं अश्लील पोस्टरों से ? और ध्यान रहे, आदमी नग्न स्त्री को देखना चाहता है बजाय अश्लील पोस्टरों को मिटाने की कोशिश के । क्यों ? यह सोचना जरूरी है कि आदमी नग्न स्त्री में इतना उत्सुक क्यों है ? उत्सुकता का कारण क्या है ? उत्सुकता का कारण है और कारण साधु-संतों ने ही दिया है । कारण यह है कि हम स्त्री-पुरुष को इतने दूरी पर खड़ा करते हैं कि करीब-करीब वे एक जाति के प्राणी नहीं, दो अलग जाति के जानवर हो जाते हैं । उन्हें अलग-अलग बड़ा करके फासले को इतना बड़ा करते हैं कि एक दूसरे को जानने की उत्सुकता शेष रह जाती है । और फासले इतने ज्यादा होते हैं कि जानने का मौका ही नहीं मिलता है एक दूसरे को । अगर लड़के और लड़कियों को करीब और निकट बड़ा किया जा सके, तो वे एक दूसरे के साथ खेलते हों, दौड़ते हों, तैरते हों तो अश्लील पोस्टर धीरे-धीरे विदा हो जायेंगे ।

अभी मैंने एक घटना पढ़ी । सिडनी में एक नग्न अभिनेत्री को लाया गया प्रदर्शन के लिए । सिडनी बीस लाख की आबादी का शहर है । बहुत प्रचार किये गये । दो आदमी टॉकीज में देखने गए, सिर्फ दो आदमी ! अहमदाबाद में कितने आदमी जाते, सोच सकते हैं ? अगर दो आदमी भी पीछे रह जाते तो चमत्कार है । सभी लोग जाते, जाना ही पड़ता । इसमें कोई उपाय नहीं था, फिर इतना फर्क पड़ता कि कुछ लोग सामने के दरवाजे से जाते, कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से जाते । यह फर्क पड़ सकता था, लेकिन जाना तो पड़ता । दो आदमी देखने आये सिडनी में, एक चमत्कार है । एक नग्न सुन्दरी का नृत्य हो रहा हो और पूरी टॉकीज खाली हो और केवल दो आदमी देखें, यह बात क्या है ? सिडनी में क्या बात हो गई है ? स्त्री और पुरुष इतने निकट बड़े हुए हैं कि यह बात बेहूदी है । अगर हम यह घोषणा करें कि एक आदमी का नंगा नाच दिखाया जायगा, तो क्या आप देखने जायेंगे ? नहीं जायेंगे, क्योंकि नंगे आदमी आप देख चुके हैं और कोई कारण नहीं है ।

बर्टेन्ड रसेल ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि एक जमाना ऐसा था कि इंग्लैंड में विक्टोरियन युग में स्त्रियां इतना बड़ा घाघरा पहनती थीं कि उनके पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था । उसने लिखा है कि उस जमाने में बड़ी अजीब बात थी कि अगर किसी स्त्री का पैर का अंगूठा दिख

जाय तो बड़ी रस-विमुग्धता पैदा हो जाती थी—चित्त रसमग्न हो जाता था—काव्य का झरना बहने लगता था पैर का अंगूठा देखकर। अभी हम कहेंगे कि पैर का अंगूठा देखकर कविता निकलती थी, पागल हो गए थे लोग ! अब तो पैर के अंगूठे सब तरफ दिखाई पड़ रहे हैं, तो कोई कविता नहीं निकलती। सिडनी में नग्न स्त्री को देखकर भी कोई कविता नहीं निकली। हिन्दुस्तान में अभी भी निकलती है।

अश्लील फिल्म बनानी पड़ती हैं, अश्लील पोस्टर लगाना पड़ता है, क्योंकि हमारी मांग है। और अश्लील पोस्टर न लगेगा, नग्न फिल्म न होगी तो खतरे में होंगे। सड़क पर वस्त्र पहनकर स्त्री को न चलने देंगे। स्त्री सड़क पर निर्वस्त्र नहीं की जा रही है, क्योंकि निर्वस्त्र स्त्रियों को देखने की टॉकीज में व्यवस्था है, नहीं तो खतरा पूरा है। वह जो हमारे मन की मांग है, उसको पूरा करेंगे और हम कर भी लेते हैं। मौका मिलता है तो फिल्म पर हम निर्भर रहते भी नहीं हैं, वह तो मौका नहीं मिलता है तब तक हम फिल्म पर निर्भर रहते हैं। मौका मिल जाय, हिन्दू-मुसलमान दंगा हो जाय, फिर हम फिल्म की फिक्र करते हैं ? फिर जो भी स्त्री मिल जाय, उसे नग्न कर लेते हैं। हम कर लेंगे। साधु-संत उससे छुटकारा नहीं दिला सकते, क्योंकि वे ही उस वृत्ति को जन्माने में मूलभूत कारण हैं।

स्त्री और पुरुष को निकट लाना पड़ेगा, सरलता से निकट लाना पड़ेगा। वे जितने निकट आ जायेंगे उतने ही उनके फासले से पैदा हुई बीमारियां दूर हो जायेंगी। **भारत में जलता हुआ प्रश्न यह भी है। विशेषकर युवकों के सामने बहुत बड़ा सवाल है। वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं। पुरानी सारी व्यवस्था उनकी निन्दा करती है; और उनके चित्त और उनकी शिक्षा उन्हें मुक्त करने की व्यवस्था करती है। यह बहुत कठिन है।**

विरोधाभास
(एक मुक्तक)

जाना जिसे न था
चला गया
जिसको जाना था
नहीं गया !

जो है—उससे प्यार
है नहीं
है उससे प्यार—
जो है नहीं !!

'आकुल' राजेन्द्र

● अनुवाद : *स्वामी परमानन्द भारती*

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

"मैं स्वप्न-भंजक हूं और तुम्हारी तंद्रा को तोड़ना चाहता हूं"

—रजनीश—

पिछले सितंबर अंक में इस वार्त्ता का प्रथम अंश आपने पढ़ा। उसी क्रम में यह आगे का अंश प्रस्तुत है।

मैं द्वार हूं

कृष्ण कह सके अर्जुन से कि सब कुछ छोड़ दे, मेरी शरण आ, समर्पित हो जा। जीसस कह सके : "मैं सत्य हूं, मैं द्वार हूं, मैं हूं दरवाजा, मेरे पास आओ, मुझसे होकर गुजरो। मैं न्याय के आखिरी दिन तुम्हारा गवाह होऊंगा। मैं तुम्हारे लिए जवाब दूंगा।" यह सब एक ही है। हरेक दिन न्याय का दिन है और हरेक घड़ी न्याय की घड़ी है। कोई भी आखिरी दिन आने वाला नहीं है। जीसस जिनसे बोल रहे थे, उन्होंने इसे ऐसा ही समझा था। मैं तुम्हारे लिए उत्तरदाई होऊंगा और तुम्हारी जवाबदारी मेरी होगी; और जब परमात्मा वहां कुछ पूछेंगे, तो मैं तुम्हारे गवाह के रूप में मौजूद रहूंगा। यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। जो भी कोई नींद में है, ऐसा नहीं कह सकता; क्योंकि नींद में हमारे लिए अपनी जिम्मेदारी लेना भी कठिन होता है। आप दूसरों की जिम्मेदारी नहीं ले सकते। दूसरों का उत्तरदायित्व आप तभी ले सकते हैं, जब आपकी कोई जिम्मेदारी न हो, आप बिलकुल निर्भार हों। हकीकत में जबकि आप स्वयं भी न हों। यह स्वयं के न होने का दावा बहुत तरह से किया जाता रहा है।

जब जीसस ने कहा कि मैं उस पिता का पुत्र हूं, जो स्वर्ग में है, तो वे यह कहना चाहते हैं कि वे उस व्यक्ति के पुत्र नहीं है, जो कि उनका पिता माना जाता है; वे उस मेरी के पुत्र नहीं हैं, जिसे उनकी माता के रूप में माना

जाता है। क्यों ? कभी यह सब बड़ा क्रूर मालूम पड़ता है। एक दिन वे किसी समूह में खड़े हैं और कोई उनसे कहता है कि आपकी मां—मेरी आई है। वह भीड़ के बाहर आपको बुला रही है और आपका इंतजार कर रही है। तो जीसस ने कहा : "मेरी कोई मां नहीं है। कौन है मेरी माता ? कौन है मेरा पिता ? कोई भी मेरी मां नहीं है। कोई भी मेरा बाप नहीं है।" यह बहुत कठोर मालूम पड़ता है। मां भीड़ के बाहर खड़ी है। वह प्रतीक्षा कर रही है और जीसस कहते हैं कि उससे कह दो कि कोई मेरी माता नहीं है। कोई मेरा पिता नहीं है। क्यों ? वे सिर्फ आपके मन के स्वप्न के तरीके को अस्वीकार कर रहे हैं। यह मेरा पिता, माता, पत्नी, भाई है—यह स्वप्न देखने वाले मन का ढंग है, सपनों की दुनिया का, प्रक्षेपण के जगत का। वे इसे इंकार कर देते हैं। **और जिस क्षण आप मां को अस्वीकार कर देते हैं, आपने सब कुछ अस्वीकार दिया।** क्योंकि मां के साथ ही सब कुछ शुरू होता है—पूरा का पूरा जगत। वही शुरुआत है, नींद की दुनिया में वही हमारी जड़ है, सपनों के जगत में आगमन की मूल, सभी संबंधों की स्रोत, संसार की कारण।

अगर आप अपनी मां को अस्वीकार देते हैं, तो आपने सब कुछ इंकार कर दिया। यह उनको जो गहरी नींद में है, बहुत क्रूर मालूम पड़ेगा। यह ठीक ही है। इस बात पर जोर देना कि मैं उसका पुत्र हूं, जो कि स्वर्ग में है, इतनी-सी सूचना के लिए है कि मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। मैं मेरी का पुत्र, जीसस नहीं हूं। मैं ईश्वरीय-शक्ति, ब्रह्म-ऊर्जा का एक हिस्सा मात्र हूं।

वह जो ब्रह्माण्ड के हिस्से के रूप में अपने होने को महसूस करता है, आपका गुरू हो सकता है। कोई व्यक्ति विशेष किसी का गुरु नहीं हो सकता। और अगर ऐसा होता है और ऐसा बहुत बार हो जाता है, हर रोज ही हो रहा है कि वे जो स्वयं नींद में हैं दूसरे सोये हुओं को दीक्षा दे रहे हैं। अंधा अंधे को राह दिखाता है और दोनों गड्ढे में गिरते हैं। कोई भी जो नींद में है, गुरु नहीं हो सकता; लेकिन अहंकार गुरु होना चाहता है। अहंकार की यह प्रवृत्ति बहुत भयंकर और घातक सिद्ध हुई। पूरी दीक्षा, इसका पूरा रहस्य, इसकी पूरी सुन्दरता. कुरूप हो गई। यह उन लोगों के कारण—जो दीक्षा देने के अधिकारी नहीं थे—कुरूप हो गई। सिर्फ वे, जो अहं-शून्य हैं, जो नींद में नहीं हैं, जो स्वप्न-रहित हैं, गुरू हो सकते हैं। वरना गुरु बनना सबसे बड़ा पाप है; क्योंकि तब आप दूसरों को नहीं, स्वयं को भी धोखा दे रहे हैं, क्योंकि गुरु होना बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है—परम-उत्तरदायित्व। अब आप दूसरों की

जिम्मेदारी ले रहे हैं। यह किसी के लिए जिम्मेदार होना, कोई खेल नहीं है। यह असंभव को अपने हाथ में लेना है। आप किसी और के लिए जिम्मेवार हो रहे हैं, जो नासमझी पर उतारू है। इसीलिए यह उत्तरदायित्व तभी लिया जा सकता है, जबकि समर्पण पूर्ण हो; वरना यह नहीं लिया जा सकता। जो भी अपने लिए कुछ रोक लेता है, उसकी जिम्मेदारी नहीं ली जा सकती; क्योंकि वह स्वयं के होने को बनाए रखेगा—वह आपको नहीं सुनेगा—वह अपने ढंग से ही आपको समझेगा।

प्रतीक्षा की आवश्यकता

एक सूफी कथा है। एक अमीर की मृत्यु हुई। वह सिर्फ धनवान ही नहीं बुद्धिमान भी था, जबकि ऐसा बहुत कम देखने में आता है। उसके लड़के की उम्र तब दस-बारह साल थी, इसलिए उसने गांव के बुजुर्गों के नाम, पंचायत के नाम, वसीयत की। वसीयत में उसने लिखा कि मेरी संपत्ति में जो आपको सबसे अधिक पसंद हो आप रख लेवें, फिर उसे मेरे पुत्र को दे देवें। वसीयत का मतलब बिलकुल साफ था। पांचों बुजुर्गों ने सारी सम्पत्ति आपस में बांट ली। जो भी कीमती था सब उन्होंने आपस में बांट लिया। शेष कुछ भी नहीं बचा। सिर्फ थोड़ी-सी सम्पत्ति जो किसी के काम की नहीं थी, जिसे लेने को कोई राजी नहीं हुआ, बच गई और वह लड़के को दे दी गई। लेकिन मरते समय एक पत्र उस वृद्ध ने अपने लड़के को भी दिया था, जिसे उसने एक खास उम्र का होने पर खोलने को कहा था। उस उम्र का होने पर, उसके लड़के ने वह पत्र खोला, इसमें उसके पिता ने लिखा था, "मेरी वसीयत से मेरा जो मतलब है, हालांकि वे अपने ढंग से इसका आशय कुछ और निकालेंगे और उन्हें वही अर्थ लगाने दो। परंतु जब तुम इस उम्र के हो जाओ, तो उन्हें मेरी यह व्याख्या दे देना। यह मेरी व्याख्या है, मैं जो कहना चाहता हूं, वह यह है। और उसमें लिखा था : जो आपको सबसे अधिक पसंद हो आप ले लेवें और फिर जो आपको सबसे अधिक पसंद है, वह सब मेरे बेटे को दे देवें।"

लड़के ने पत्र बुजुर्गों के सामने पेश कर दिया। उन्होंने तो ऐसे किसी अर्थ की कल्पना भी न थी और इसीलिए उन्होंने वे सभी चीजें लड़के को लौटा दीं, जिसके लिए लड़का मौजूद था और अन्त में एक टिप्पणी में उसके पिता ने लिखा था :

"यह अच्छा ही है कि वसीयत का अर्थ वे अपने तरीके से लगावें, जब तक कि तुम सम्पत्ति को संभालने के योग्य न हो जाओ। क्योंकि अगर सीधा

अभी मैं इसको तुम्हें सौंप देता हूं, तो जब तक तुम इसकी हिफाजत के काबिल होओगे, ये मुखिये सब कुछ चौपट कर देंगे। इसलिए इसे संभालने की योग्यता को प्राप्त होने तक, तुम इसकी हिफाजत उन्हें अपनी ही सम्पत्ति की तरह करने दो।" उन्होंने वास्तव में सम्पत्ति की सुरक्षा का खयाल इसीलिए रक्खा था, क्योंकि यह उनकी थी।

इसलिए समर्पण जब अधूरा होगा, तो आप किसी भी उपदेश, किसी भी आदेश या किसी भी संदेश का मतलब मन के उस हिस्से से निकाल लेंगे, जो आपको अधिक प्रिय, अधिक रुचिकर लगेगा। इसका अर्थ आप अपनी नींद में, मन की सुप्तावस्था में निकालेंगे। इसलिए जब तक कोई पूरी तरह समर्पित न हो जाए, उत्तरदायित्व नहीं लिया जा सकता। और जब कोई पूरी तरह समर्पित हो जाता है, तो उसकी पूरी जिम्मेदारी गुरु पर, जो जागा हुआ है, उस पर आ जाती है। और तब यह भी पूरी हो जाती है। पुराने जमाने में दीक्षा कोई आसान बात नहीं थी। यह बहुत कठिन, दुस्साध्य बात थी। क्योंकि उस समय यह घटना ऐसी ही थी और इसीलिए इसे कठिन बनाकर रक्खा गया। लोगों को दीक्षा के लिए वर्षों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। किसी की पूरी जिन्दगी भी इन्तजार में गुजर सकती थी। **क्योंकि इसके पहले कि कोई पात्रता को उपलब्ध हो, दीक्षा नहीं दी जाती थी। इन्तजार की ये घड़ियां ही पात्रता के परीक्षण का आधार थीं।** क्या आप में धैर्य है? क्या प्रतीक्षा करने की क्षमता है? सिर्फ इंतजार से ही आपकी पात्रता का, परिपक्वता का अंदाज लगाया जा सकता था। बच्चा एक क्षण के लिए भी इंतजार नहीं कर सकता। अगर वह कोई खिलौना चाहता है, तो वह उसे अभी और यहीं चाहेगा, वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। इसलिए मन की अधीरता से अपरिपक्वता का पता लगता है। यही कारण था कि उस जमाने में दीक्षा के पहले व्यक्ति को सालों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। यह प्रतीक्षा परीक्षण का मापदंड थी और यह प्रतीक्षा एक अनुशासन भी थी।

उदाहरण के लिए एक सूफी फकीर एक नियत अवधि की प्रतीक्षा के बाद ही आपको दीक्षा देगा। गुरु के बोलने तक आपको सिर्फ चुपचाप इंतजार करना पड़ेगा। बहुत-सी बातें लोगों को करनी पड़ती थीं। मिसाल के तौर पर एक सूफी मोची हो सकता है। अगर उससे दीक्षित होना चाहते हैं, तो सालों आपको जूते गांठने में उसकी मदद करनी होगी। और यह भी आपको बिना किसी शंका के करनी पड़ेगी। इस जूते गांठने से क्या होगा? कैसे मैं आत्म-

ज्ञान को प्राप्त हो जाऊंगा ? कैसे ईश्वरत्व को प्राप्त होऊंगा ? इस जूते गांठने से इन सबका क्या संबंध हो सकता है ? अगर ऐसी शंकाओं का भी समाधान आप चाहेंगे, तो आपको खदेड़ दिया जायगा। क्योंकि आपको इनसे कोई मतलब नहीं है। यह गुरु का मामला है कि वह मालूम करे कि इनका क्या संबंध है। आप कैसे जान सकते हैं ? आप परमात्मा को ही नहीं जानते, इसलिए आपको यह पता नहीं लग सकता कि जूता गांठना किस तरह परमात्मा से जुड़ा हो सकता है— आप यह नहीं जान सकते। पांच वर्ष तक एक व्यक्ति जूता गांठने में गुरु की मदद करता रहता है और प्रतीक्षा करता है। वह प्रार्थना और ध्यान आदि के बारे में कभी बात ही नहीं करता। जूते गांठने के काम के अलावा और कोई बात वह नहीं करता। पांच साल आपने इंतजार किया, लेकिन यह सिर्फ ध्यान है। यह कोई साधारण ध्यान नहीं है। यह पूरी तरह आपको पोंछ डालेगा।

प्रश्नों के तिरोहण का क्षण

यह सीधी-सादी प्रतीक्षा, शंकाओं से रहित प्रतीक्षा, यह भरोसा, पूर्ण समर्पण के लिए आधार तैयार कर देंगे। और कभी यह दूर से बहुत आसान मालूम पड़ता है। परंतु इतना आसान नहीं है, बहुत कठिन है यह। आपका मन बाधा डालेगा, मन में बहुत से प्रश्न उठेंगे, कई समस्यायें आपका मन खड़ी कर देगा। आपसे पूछेगा कि यह क्या कर रहे हो ? यह ठीक कर रहे हो या फिर बेकार में अपना समय बर्बाद कर रहे हो ? यह आदमी जो जूते गांठ रहा है, क्या यह वास्तव में साथ रहने लायक है ? क्या यह किसी तरह तुम्हारी खोज से जुड़ा हुआ है ? मन पूछता चला जाएगा। भीतर इसी तरह बुदबुदाहट चलती रहेगी, फिर भी आप मुंह नहीं खोल सकते। और आपको भरोसा करना पड़ेगा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अगर आप एक वर्ष भी इंतजार कर सकें, तो मन अपने आप शांत हो जायगा। यदि रोज आप इसके लिए खुराक न जुटाएं, इसकी कोई मदद न करें, तो यह टिक नहीं सकता। अगर आप रोज बेचैन नहीं होते, घबड़ाते नहीं, तो इसका बने रहना संभव नहीं हो सकता। आप सिर्फ खामोश प्रतीक्षा करते रहें और मन प्रश्न उठाता रहे, बुदबुदाता रहे आप इंतजार करते चले जायें, इंतजार करते चले जायं, और इंतजार करते चले जायं, फिर प्रश्न बेकार हो जायंगे, सारे प्रश्न मन से तिरोहित हो जायंगे, मन खाली हो जायगा— वह सारी दिलचस्पी खो देगा— वह फिर मृत रह जायगा। और हालाकि आप इंतजार करते रहेंगे, तब एक क्षण ऐसा आएगा,

जब कोई प्रश्न नहीं रहेगा। प्रश्नों के इस अभाव के क्षण में ही गुरु सम्भाषण करेगा। शिष्य के भीतर उस खामोशीपूर्ण मौन का क्षण ही गुरु के लिए उपयुक्त दीक्षा का क्षण होता है; क्योंकि अब आप सुन सकते हैं, आपकी बुदबुदाहट शांत हो गई है, आप अब चुप हैं। अब आप में एक मार्ग बन गया है। लेकिन साधारणतया हम रोज मन के लिए खुराक जुटाते रहते हैं। परेशान होते रहते हैं। आप यह पता लगाने के लिये, यह देखने के लिए कि यह जो हो रहा है, एक घंटा तक टिक सकता है, इंतजार करने को तैय्यार नहीं हैं। यह देखने को कि क्या यह नज़ारा जारी रह सकता है, आप इंतजार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यह जारी नहीं रह सकता, क्योंकि मन के साथ कुछ भी स्थायी नहीं है। यह अपने आप ही तिरोहित हो जाता है।

एक तिब्बती गुरु मिलारेपा का यह नियम था कि सात दिन तक प्रश्नकर्ता के इंतजार के बाद ही वह पूछे गए किसी प्रश्न का जबाब देता था। यह कीमत है, जो हरेक को इसके लिए चुकानी पड़ती है। अगर आप इसी क्षण उत्तर चाहेंगे, तो मैं आपको बाहर निकाल दूंगा। सात दिन तक प्रतीक्षा करो, अपने प्रश्न के साथ रहो। हकीकत यह है कि आप सात दिन तक किसी प्रश्न के साथ नहीं रह सकते। सात दिन काफी लम्बा समय होता है।

अभी मैं देखता हूं कि जो मेरे पास आते हैं, वे कोई सवाल करते हैं और अगर मैं उन्हें धोखा दे सकूं और दो मिनट के लिए भी कोई दूसरी बात करता रहूं, तो वे अपना प्रश्न भूल जाते हैं। वे फिर कभी उस प्रश्न के बारे में नहीं पूछते। वे एक घंटे तक बात करते रहेंगे, परंतु प्रश्न का जिक्र नहीं करेंगे। यह सिर्फ एक तरंग थी, एक लहर थी। इसका कोई महत्व नहीं था। इसलिए अगर आप पांच साल प्रतीक्षा कर सकें, तो अवश्य ही आप इसी प्रकार के आदमी नहीं रह पायेंगे। प्रतीक्षा एक बहुत बड़ी परेशानी हो जायगी। पुराने जमाने में जब दीक्षा काफी प्रतीक्षा के बाद दी जाती थी तब समर्पण आसान था और उत्तरदायित्व भी लिया जा सकता था।

अब सभी बातें बदल गई हैं। कोई भी प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं है। **आधुनिक दिमाग की सबसे संघातिक बीमारी है जल्दबाजी।** आधुनिक दिमाग की नयी घटना उसकी समय के प्रति जागरूता है। हम समय के बारे में इतने सावधान हो गए हैं, इतने सचेत हो गए हैं कि हम एक क्षण के लिए भी प्रतीक्षा नहीं कर सकते।

◂ दीक्षा का रहस्य ▸

मृत्यु का भय

यह पूरा युग बाल-स्वभाव वाला है। कहीं कोई परिपक्वता या प्रौढ़ता नहीं। क्योंकि परिपक्वता आती है प्रतीक्षा से। और प्रतीक्षा तभी संभव हो सकती है जब मानव-चेतना समय-बोध से भरी होने के बजाय समय-बोध से शून्य हो। इस समय-बोध के कारण दीक्षित करना ही नामुमकिन हो गया है। आपको दीक्षित नहीं किया जा सकता। आप दौड़ते हुए बुद्ध के पास से गुजरते हैं और उनसे पूछते हैं कि "क्या आप मुझे दीक्षित करेंगे ?" आप दौड़ रहे हैं। आप राह पर भागते हुए बुद्ध से टकरा जाते हैं। यह चार-पांच शब्द भी आप उनसे रुककर नहीं कह पाते। आप दौड़ते ही रहते हैं। परिपक्वता असंभावना बन गयी है। लेकिन यह समय को लेकर इतनी जागरूकता, जो इस तरह रुकावट बन गई है, एक सबसे बड़ी बाधा बन गई है, आखिर क्यों ? पहले यह क्यों नहीं थी ? अब यह इतनी ज्यादा क्यों हो गई ?

यह समय-बोध सिर्फ उसी अवस्था में गहन होता है, जब आप मृत्यु के भय से भर जाते हैं। आप शायद इसका अंदाज न लगा पायें, किंतु जितना आपका मृत्यु-बोध बढ़ता जाता है, ठीक उसी अनुपात में आपका समय का बोध भी गहरा होता चला जाता है। मौत सामने खड़ी हो तो एक क्षण भी खोना मुश्किल है। प्रत्येक क्षण जो हाथ से निकल गया, वह सदा के लिए चला गया और मौत पास आती जाती है, आप मरने वाले हैं। इसलिए प्रत्येक क्षण का पूरा उपयोग कर लेना जरूरी है। आप प्रतीक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि प्रतीक्षा का अर्थ होता है—मृत्यु की प्रतीक्षा। मृत्यु घटित होने वाली है, कोई प्रतीक्षा नहीं कर सकता; किसी को पता नहीं कि कल क्या होने वाला है, अगले क्षण में क्या होने को है। मृत्यु भी घटित हो सकती है और आप परेशान हो जाते हैं, आप कांपने लगते हैं, आप दौड़ना शुरू कर देते हैं। आधुनिक दिमाग की यह पूरी की पूरी दौड़ इसीलिए है कि आदमी को मृत्यु का भय है।

यह पहली बार हुआ है कि पृथ्वी पर मनुष्य मृत्यु से इतना भयभीत हो गया, क्योंकि ऐसा पहली बार हुआ है कि मनुष्य का अमरत्व का खयाल बिलकुल खो गया है। अगर आपको अपनी अमरता का बोध हो, तो जल्दबाजी की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आप उस अनंत से संबंधित हो जाते

हैं और फिर समय की कोई कमी नहीं रह जाती। कुछ भी नष्ट नहीं होता, क्योंकि काल तो अनंत है। इसलिए एक क्षण का बीत जाना ऐसा नहीं मालूम देता कि कोई कमी आ गई। हमेशा यह एक-सा ही बना रह जाता है, क्योंकि यह तो अनंत है। ऐसे खजाने में से जिसका कोई माप-तौल आप तय नहीं कर सकते, कुछ भी खो पाना आपके लिए संभव नहीं। आप उसमें से खर्च करते ही चले जायं, फिर भी उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। जो शेष रह जाता है, वह हमेशा वैसा ही होता है, उतना ही होता है। आप इसमें से कुछ भी निकाल नहीं सकते, उसको कभी कम नहीं कर सकते। लेकिन हम तो समय के अभाव से भरे हैं। समय की कमी है और मृत्यु घटित होने वाली है।

हमें सिर्फ अपने शरीर का ही खयाल है, जो कि मरणधर्मा है। हमें अपनी आंतरिक-चेतना का कोई बोध नहीं, जो कि अमर है। प्राचीन काल में अमरत्व के बोध से भरे हुए लोग मौजूद थे। उनके इस बोध के कारण, इस अमरत्व के कारण, वे एक वातावरण कायम कर पाते थे, एक ऐसा घेरा निर्मित कर देते थे, जिसके भीतर कोई जल्दबाजी नहीं होती थी। घटनाएं यदि कभी घटती भी थीं, तो बहुत आहिस्ते से घटित होती थीं। तब दीक्षा आसान थी। तब प्रतीक्षा सहज थी। तब समर्पण आसान था। तब उत्तरदायित्व आसान था। ये सभी आज बहुत मुश्किल हो गए हैं। लेकिन फिर भी दूसरा कोई उपाय, दूसरा कोई विकल्प नहीं है। दीक्षा की आवश्यकता है। और पुरानी दीक्षा अब चलनी असंभव है। इसके बदले में कोई नई दीक्षा आवश्यक हो गई है। पुराने के स्थान पर नये की प्रतिष्ठा आवश्यक हो गई है। मेरी सारी चेष्टा, सारा श्रम इसी संबंध में है।

अगर आप जल्दी में हैं, तो मैं आपको दौड़ने की हालत में ही दीक्षित कर दूंगा, नहीं तो दीक्षा संभव नहीं हो पायेगी। इसलिए मैं प्रतीक्षा को प्राथमिक शर्त के रूप में आपके सामने नहीं रख सकता। पहले मैं आपको दीक्षित करूंगा और फिर कई उपायों से आपकी प्रतीक्षा को बनाये रखने की कोशिश करूंगा। अनेक प्रकार से मैं आपको प्रतीक्षा करने के लिए उकसाता रहूंगा, क्योंकि बिना प्रतीक्षा के परिपक्वता नहीं आ सकती। इसलिए जब आप तैयार हो जायगे, तो आपकी दूसरी दीक्षा होगी जो प्राचीन-काल में पहली होती थी। अब यह पहली नहीं हो सकती।

कभी लोग बौखलाहट से भरे होते हैं। कभी कोई मेरे पास आता है। उसने मेरी बातें भी नहीं सुनी। वह मुझसे परिचित भी नहीं होता है और मैं

उसे संन्यास के लिए दीक्षित कर देता हूं। यह बहुत बेहूदा है और समझ के बिलकुल बाहर है, लेकिन मैं जानता हूं। और जो कुछ भी मैं कर रहा हूं बहुत जान-बूझकर कर रहा हूं। यह दीक्षा देना तो एक शुरुआत है। क्योंकि सिर्फ इस दीक्षा के माध्यम से ही मैं प्रतीक्षा के लिए आवश्यक उपकरण निर्मित कर पाऊंगा। वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। अगर मैं उससे कहूं कि तुम्हें दीक्षित होने के पहले पांच साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, तो वह प्रतीक्षा नहीं कर सकेगा। मैं इसी क्षण उसे दीक्षित कर देता हूं, फिर वह प्रतीक्षा कर सकता है। इसलिए यदि इस तरह भी इसे जारी रखा जाय, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरी पद्धति वही है। चूंकि आप प्रतीक्षा नहीं कर सकते, मैं बदल जाता हूं। मैं आपको बाद में प्रतीक्षा करने की इजाजत दे देता हूं, और फिर एक दूसरी दीक्षा भी होगी। यह सिर्फ औपचारिक दीक्षा है। दूसरी अनौपचारिक होगी। दूसरी घटना के रूप में घटित होगी। आप मुझसे कुछ नहीं मांगेंगे, मैं आपको कुछ नहीं दूंगा। यह घटित होगी। आपके अस्तित्व की आत्यंतिक गहराई में यह फलित होगी और जब यह फलित होगी तो आपको इसका पता चलेगा।

आज दुनिया के सामने कोई दूसरा उपाय नहीं रहा, समय के बोध से पीड़ित इस दिमाग के लिए अन्य कोई रास्ता नहीं रहा। पहले मैं आपको ढकेलूंगा और फिर मैं आपके ऊपर कोई प्रयोग करूंगा। प्रयोगों का तौर-तरीका बिलकुल दूसरा होगा। पुरानी विधियां प्रयुक्त नहीं की जा सकतीं। उदाहरण के लिए अब मुझे आपकी समझ के साथ ज्यादा श्रम करना होगा, जिसकी पहले कभी जरूरत नहीं पड़ी। समझ को हमेशा बाधा स्वीकारा गया। मैं भी जानता हूं कि यह बाधक है। मुझे भी मालूम है कि समझदारी से हकीकत में कुछ नहीं होता। लेकिन मुझे आपकी समझ के साथ काम करना होगा, पूरी मेहनत करनी पड़ेगी। क्योंकि यदि आज कोई कहे कि आपकी समझ की कोई आवश्यकता नहीं है, तो इस कथन का अर्थ भी आप अपनी समझ से लगाएंगे। ऐसे व्यक्ति से आपका संबंध ही समाप्त हो जाएगा। इसके बाद कोई गहरा आंतरिक संबंध नहीं स्थापित हो सकेगा। इसके साथ हमेशा के लिए बात पूरी हो जायेगी, दरवाजे हमेशा के लिये बन्द हो जाएंगे। आज ऐसी बात नहीं कही जा सकती। हालाँकि यह एक आधारभूत सत्य है, फिर भी इसे कहने का कोई उपाय नहीं रहा। पुराने जमाने में यह कहना संभव था।

आज मुझे आपकी समझ के साथ सबसे ज्यादा मेहनत करनी होगी; और केवल आपकी समझ के साथ जब मैं इतना श्रम कर सकूं कि वह आपकी पकड़ने की शक्ति के बाहर हो जाए, सिर्फ तभी यह संभव हो पाएगा कि मैं आपको इस कथन के लिए तैयार कर पाऊं कि "समझदारी को फेंक दो, बिलकुछ छोड़ दो।" इसके पहले यह मुमकिन नहीं हो सकता और देखा जाय तो इस तरह के श्रम की पहले कभी कोई जरूरत नहीं पड़ी। आपके स्वीकृति प्रदान करते ही यह बात आपके दिमाग को भी स्वीकृत हो जाती है, क्योंकि यह बहुत ही ऊपरी बेकार हिस्सा है। अगर आप आश्वस्त हो सकें कि जो कुछ भी कहा जा रहा है, वह संगत है तो फिर मैं असंगत के बारे में बोलना शुरू कर सकता हूं। वास्तव में आरंभ यही है। लेकिन आपके हृदय के करीब पहुंचने के लिए आपकी समझदारी के रास्तों पर मेरा चक्कर काटना आवश्यक है। समझदारी की भूल-भुलैयों में अनावश्यक भटकन से गुजरना पड़ेगा, क्योंकि यह इस युग की अनिवार्यता बन गयी है। अब असंगत को पाने के लिए भी चेष्टा का आरंभ संगत से करना होगा।

यह प्रतीक्षा काल, जो आपकी समझ के पार है, उसके लिए आपको प्रशिक्षित करेगा और इसके साथ-साथ मैं आपको ध्यान की तरफ ढकेलूंगा और इसके लिए पूरी कोशिश करूंगा। पुराने दिनों में ध्यान एक बहुत गुह्य, अंतरंग बात थी। पूरी तैयारी के बाद ही यह आपको सौंपी जाएगी, क्योंकि यह सर्वाधिक गोपनीय खजाने की सर्वाधिक गोपनीय कुंजी है। आपको यह तभी सौंपी जा सकती है, जब आप पूरी तरह इस योग्य हो गए हों, वरना इसे आपको सौंपना मुमकिन नहीं हो सकता।

कुन्जी

लेकिन यदि मैं आपके योग्यता हासिल करने तक आपका इन्तजार करने लगूं, तो इसे सौंपना कभी भी संभव नहीं हो पाएगा। इससिए मैं आपके हाथ में एक ताली दे दूंगा, जो कि देखा जाए तो एक झूठी ताली होगी। आप इसके साथ खेलते रह सकते हैं और इसके साथ आप इंतजार कर सकते हैं। और इस ताली से ज्यादा यह प्रतीक्षा करना ही आपकी मदद करेगा। एक झूठी ताली के पास होने से भी आप अधिक आसानी से रह सकेंगे। परन्तु यह ताली इस तरह से बनायी गई है कि इसका निरंतर प्रयोग करते रहने से यह असली ताली में परिवर्तित हो जायगी। इस ताली को इस

तरह से गढ़ा गया है कि आप इससे खोलने की कोशिश करते रहें, परंतु इसी क्षण में आप इससे दरवाजा नहीं खोल सकते। ताली झूठी है, इसमें कुछ अनावश्यक कौने भी मौजूद हैं। लेकिन अगर आप इससे बराबर कोशिश करते चले जायं, तो वे अनावश्यक कोने गिर जाएंगे, घिस जाएंगे। यह असली ताली बन जाएगी और हर रोज यह थोड़ी ज्यादा घूमती चली जाएगी। मैं सोचता हूं कि आप मेरी बात समझ रहे हैं। मुझे इसकी जगह कोई दूसरी ताली नहीं देनी होगी। वही ताली अधिक प्रयोग करने पर असली ताली बन जाएगी। इसके बेकार कोने घिस जाएंगे। लेकिन मैं आपके योग्य होने तक इंतजार नहीं कर सकता और तब मैं आपको ऐसी ताली दूं, जिससे आप इसी क्षण द्वार खोल सकें। द्वार मौजूद है, ताली मौजूद है; लेकिन अभी आप योग्य नहीं हैं, अधिकारी नहीं हैं।

तो दो तरीके हैं। एक तो आप पुराने जमाने के अनुसार प्रतीक्षा करें और मैं आपसे कहूं, "पांच साल तक इंतजार करो। यह ताली रही, वह दरवाजा रहा, लेकिन पांच साल तक रुको। फिर कभी मुझे मत पूछना कि ताली कहाँ है। कभी उत्सुकतावश भी दरवाजे को मत छूना। कभी ताले के पास भी नहीं जाना—इंतजार करो। अगर मैंने कभी यह पाया कि तुम ताले की तरफ झांक रहे हो तो मैं तुम्हें यहां से बाहर कर दूंगा। बस इंतजार करो, ताले की तरफ कभी ताकना भी नहीं, कभी ललचाना भी मत। यह ताली है और जब इसके अधिकारी होने की योग्यता हासिल कर लोगे, मैं तुम्हें यह सौंप दूंगा।" यह पुरानी पद्धति थी। लोग सालों इंतजार करते थे। कई जीवन लोगों ने इंतजारी में बिता दिए।

एक कहानी है। एक शिष्य ने तीन जीवन इंतजारी में बिताए। गुरु यह जांच रहा था कि वह अधिक से अधिक कितना इंतजार कर सकता है। उसने कहा कि मेरी यह जानने की इच्छा है कि तुम ज्यादा से ज्यादा कितना इंतजार कर सकते हो। शिष्य ने कहा, "ठीक है। मैं भी यह देखता हूं कि आप कब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं।" क्योंकि यह प्रतीक्षा तो दोनों के लिए होती है, कभी यह मत सोच लेना कि यह प्रतीक्षा सिर्फ आपके लिए ही है। अगर आप इंतजार कर रहे हैं, तो मैं भी इंतजार कर रहा हूं। और मैं आपसे अधिक जल्दी में हूं, क्योंकि मैं शायद फिर न हो पाऊं। इसलिए शिष्य ने कहा, "देखें, हममें से कौन अधिक प्रतीक्षा कर सकता है।" गुरु के लिए यह कठिन हो गया, उसे तीन बार जीवन में आना पड़ा और शिष्य प्रतीक्षा करता रहा। हरेक

बार, आया और बैठा रहा, और हर बार उसी कहानी की पुनरावृत्ति हुई। आखिर गुरु का धैर्य जवाब दे गया, उसने कहा, "यह ताली संभालो, तुम जीत गए।" शिष्य ने कहा, "आपको इतनी जल्दी क्यों है ? मैं अभी और प्रतीक्षा कर सकता हूं।" उसने कहा, "तुम प्रतीक्षा कर सकते हो, परंतु इस प्रतीक्षा के कारण मुझे बेकार ही पृथ्वी पर आना पड़ता है और ऐसा लगता है कि तुम इसे हमेशा के लिए कायम रख सकते हो, इसलिए यह ताली संभालो।" लेकिन शिष्य ने कहा, "ताली तो मुझे मिल गई है, क्योंकि यह इतनी लंबी प्रतीक्षा ही ताली बन गई है। अब मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं।" गुरु ने कहा, "मेरी जल्दबाजी का एक कारण यह भी था, क्योंकि अगर तुम और अधिक इंतजार करते रहोगे तो फिर ताली सौंपने की आवश्यकता नहीं रह जायगी। यह प्रतीक्षा ही ताली बन जाएगी।"

यह पुराना तरीका था। पहले प्रतीक्षा करो, फिर ताली सौंपी जायगी। अब यह संभव नहीं है, इसलिए मुझे पूरी विधि में तबदीली करनी पड़ी है। मैं आपको ताली सौंप देता हूं, तब आप इसके साथ खेलते रह सकते हैं। बिना किसी व्यस्तता के आप इंतजार नहीं कर सकते। लेकिन व्यस्तता के साथ आप इंतजार कर सकते हैं। अब आपके पास कुंजी है, आपके पास ताला है, दरवाजा है, आपके पास खजाने के बाबत सूचनाएं हैं, आपके पास सब कुछ है। मैं भी खजाने के बारे में आपसे चर्चा करता रहता हूं। आपके पास ताली है। आप इंतजार कर सकते हैं, आप कुंजी और ताले के साथ खेलते रह सकते हैं और इस खेल और प्रतीक्षा से ही गलत ताली सही ताली में बदल जाती है।

शारीरिक–रूपान्तरण का श्रम

उत्तरदायित्व हमेशा आपके समर्पण के अनुरूप ही होता है, परंतु और भी बहुत-सी बातें हैं जिनमें शिष्य के अनुसार होने जैसी कोई विशिष्टता नहीं होती। सिर्फ एक बात है, जिसमें गुरु शिष्य के मुताबिक बर्ताव करता है और जो दोनों के बीच एक सम्बन्ध कायम करती है, एक सेतु निर्मित करती है। वह सेतु निर्मित होता है शिष्य के समर्पण और गुरु के उत्तरदायित्व से। लेकिन अन्य बहुत-सी बातें हैं, जो कि सिर्फ गुरु के लिए होती हैं। वास्तव में शिष्य को विशेष कुछ करना नहीं पड़ता। गुरु को बहुत कुछ करना पड़ता है। वह उचित भी है और होना भी ऐसा ही चाहिए। परंतु फिर भी शिष्य हमेशा सोचता है कि उसे बहुत कुछ करना पड़ रहा है। गुरु को बहुत कुछ करना ही

पड़ता है, बहुत-सी बातें होती हैं करने की। सिर्फ हमारी जानकारी के लिए कुछ बातें हम यहां ले सकते हैं। एक साथ अनेक सतहों पर गुरु को आपके साथ मेहनत करनी पड़ती है। आपके शरीर के बाबत भी कुछ करना पड़ता है, जिसका आपको कोई अंदाज भी नहीं लग सकता, क्योंकि आपको तो अपने शरीर का भी बिलकुल होश नहीं होता। अपने शरीर के बारे में भी आप कुछ नहीं जानते। आपको शरीर का पता उसी हालत में होता है, जब आपको भूख सता रही हो, जब कोई रोग या तकलीफ आप महसूस कर रहे हों और इससे अधिक आपको कुछ मालूम नहीं होता। इतना-सा ही सम्बन्ध आपका अपने शरीर से होता है। इस बात का कोई अनुमान भी आप नहीं लगा सकते कि आपके शरीर का होना कितनी बड़ी प्राकृतिक घटना है।

गुरु आपके शरीर के साथ बहुत कुछ करता है, क्योंकि इसके पहले कि आपका शरीर रूपान्तरित हो, वह जो अत्यधिक आंतरिक है, पकड़ में नहीं आ सकता और इस बारे में पूरी तरह आपको अनभिज्ञ रखकर कि आपके शरीर के साथ कुछ किया जा रहा है, गुरु को यह काम पूरा करना पड़ता है। क्योंकि यदि आपको यह मालूम हो जाय, तो आपकी यह जानकारी शरीर में गड़बड़ शुरू कर देगी। और तब गुरु इस काम को पूरा नहीं कर सकता, क्योंकि यह शरीर की बहुत गुप्त प्राकृतिक घटना है; यह तभी काम कर सकती है, जबकि आपको इसकी कोई भी जानकारी न हो। अगर आपको इसका पता लग जाय, तो फिर यह काम नहीं करेगी। मिसाल के तौर पर आप एक प्रयोग कर सकते हैं। कल जब भोजन करें, तो पूरे होश से भर जायं और उसके बाद बराबर यह खयाल बनाये रखें कि आपका पेट पाचन-क्रिया में लगा हुआ है और भोजन से पौष्टिक तत्वों को ग्रहण कर रहा है। पूरे चौबीस घंटे तक इस बोध से भरे रहें और आप रुग्णता महसूस करने लगेंगे, आपका पेट गड़बड़ा जायगा—भोजन से कोई पौष्टिक तत्व आप ग्रहण नहीं कर सकेंगे, वह जहर बन जायगा। आपको इसे पूरा का पूरा बाहर निकाल देना पड़ेगा। सारी पाचन-प्रक्रिया मुसीबत में पड़ जायगी। इसीलिए आपको नींद की आवश्यकता होती है। निद्रा में शरीर अपना काम बहुत सुचारु रूप से पूरा कर लेता है, आपको कुछ पता नहीं पड़ता। यदि कोई बीमार है, तो सबसे पहले डाक्टर यह जानना चाहेगा कि मरीज को नींद ठीक से और पूरी आती है या नहीं; अन्यथा कोई भी दवा काम नहीं करेगी। तब कोई भी मदद संभव नहीं हो सकती, उसकी कोई सहायता नहीं की जा सकती; क्योंकि वह इतना अधिक बीमारी के खयाल से भरा हुआ है कि उसका शरीर कोई काम नहीं कर सकता।

बीमारियों के बारे में इस खयाली पकड़ के कारण हम बहुत-सी बीमारियों को बेकार ही बनाए रखते हैं। एक बार आपके पेट में कोई खराबी हो जाय, आप इस बारे में पूरे सतर्क हो जाते हैं। फिर आपका पेट बिलकुल ठीक होता है, परंतु खयाल बना रह जाता है, चलता रहता है। तब यह खयाल, यह फिक्र गड़बड़ी शुरू कर देती है और यह दुष्ट-चक्र की तरह चलता रहेगा। आपकी जानकारी के कारण आपका पेट खराब होता रहेगा और पेट की खराबी की वजह से आपका बोध गड़बड़ा जायगा। अब इसके बाहर निकलना आपके लिए बहुत मुश्किल काम है। आप इसके भीतर ही टिके रहेंगे और यह आपके पूरे जीवन का क्रम बन जाएगा। एक दिन आपकी नींद में कोई अड़चन पैदा हो जाती है। दूसरे दिन आप बिलकुल ठीक हैं, परंतु अब यह बात आपके खयाल में आ गई है। अब आप सोच रहे हैं कि शायद आज भी आपको नींद न आए। आज आप खयाल से भर गए हैं, विचार से भर गए हैं। नींद नहीं आ पाएगी; आप बहुत अधिक खयाल से भरे हुए हैं। अब अगली सुबह आप और भी अधिक विचार से भर जायंगे। इसलिए गुरु को आपके शरीर के सम्बन्ध में बहुत से काम करने होते हैं, जिनके बारे में वह आपको कुछ भी नहीं बता सकता। आपको स्पर्श करना भी कुछ काम करेगा। आपके सर पर रखा गया हाथ भी कुछ करेगा। प्राचीन काल के पुराने लोगों के साथ यह सब बहुत आसान था। वे शरीर के प्रति इतने अधिक बोध से भरे हुए नहीं होते थे। समय-बोध के साथ उसी मात्रा और आकार में शरीर बोध भी बढ़ गया है। इसे मैं मौत का खयाल कहता हूं। वास्तव में जितने अधिक आप मौत के खयाल से भरे होंगे उतना ही आपका शरीर-बोध बढ़ जायगा।

आज प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर के प्रति इतना सतर्क है कि उसके पूरे अनजाने में शरीर का एक स्पर्श भी संभव नहीं हो सकता। जैसे ही कोई स्वयं के बारे में पूर्ण सावधान हो जाता है, तो स्पर्श का आंतरिक अर्थ है, जो इसकी आंतरिक प्रक्रिया है, बंद हो जाती है। हम इतने संवेदनशील, ऐसे छुई-मुई बन गए हैं कि बराबर इसका खयाल रखते हैं कि कहीं कोई हमसे छू न जाय। भीड़ में आप खड़े हैं, हरेक व्यक्ति आपसे सटकर निकल रहा है, परंतु भीतर कहीं यह कोशिश बराबर चलती रहती है कि कोई भी आपको न छू पाए। इस तरह बातें बहुत मुश्किल हो गई हैं, बेकार की परेशानियां बढ़ गई हैं। बहुत तरह से मुझे आपके शारीरिक रूपान्तरण के उपायों के बारे में सोचना

पड़ता है। मेरे ध्यान-प्रयोग में, मैंने एक भाग रेचन का, विसर्जन का आपके शरीरिक-चक्रों के रूपान्तरण, उनकी सक्रियता के लिए जोड़ दिया है। ध्यान की पुरानी विधियों में कहीं पर भी यह नहीं मिलेगा, क्योंकि चक्रों की सक्रियता का यह काम गुरु द्वारा किया जाता था। गुरु का स्पर्श पर्याप्त होता था बहुत कुछ विसर्जित कर देने के लिए, बहाकर ले जाने के लिए, परन्तु अब यह कठिन हो गया है।

उदाहरण के लिए, जेन गुरु डण्डा रखते थे। वे उससे पीटते थे। पश्चिम का कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि इसका उद्देश्य क्या था। जो इस परंपरा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखने वाले हैं, वे भी इसे नहीं समझ सकते। और फिर जेन गुरु भी इसके पीछे जो अभिप्राय छिपा था, उसके बारे में कुछ भी नहीं कहता था। यह केवल पीटने का काम नहीं है, यह किसी खास चक्र पर चोट करना है। पीटना यह बिलकुल नहीं है। परंतु इसे छिपाने की आवश्यकता है। वह आपकी पीठ पर मार रहा है एक खास स्थान पर और यदि वह आपको बता दे कि "मैं किसी खास विधि से तुम्हारे शरीरिक रूपान्तरण के उद्देश्य से इस चक्र को सक्रिया कर रहा हूं, उस पर चोट कर रहा हूं, तो आप अपने बारे में खयाल से भर जाएंगे। वे इस बारे में कुछ भी नहीं बताएंगे। वे कहेंगे कि शायद आप सो गए हैं, इसलिए आपको पीटा जा रहा हैं। जब भी लगेगा कि आप सो गए हैं, आपको पीटेंगे और यह पिटाई पूरी प्रक्रिया को अनभिज्ञता में पूरा करने का एक चालाकी भरा खेल है। आप सोचेंगे कि मुझे पीटा जा रहा है, आपको यह पता भी नहीं चलेगा कि किसी खास चक्र पर चोट की गयी है। अब इस विधि को भी काम में नहीं लाया जा सकता।

आपके आंतरिक स्रोतों के प्रवाह-परिवर्तन के खयाल से योगासनों का सहारा लिया जाता था, विशेष मुद्राओं का प्रयोग होता था; लेकिन उन सभी को साधने में काफी लंबे समय की जरूरत होती थी। अब यह संभव नहीं है कि कोई उतने समय तक इनके अभ्यास के लिए राजी हो पाए। शान्त एवं एकाकी वातावरण की आवश्यकता होती है इनके अभ्यास के लिए लिए, बीच बाजार में यह नहीं चल सकता। क्योंकि, जिस समय आप किसी आसन या मुद्रा विशेष का अभ्यास कर रहे हैं, तो उस अवस्था में कोई खास चक्र विशेष रूप से सक्रिय एवं संवेदनशील हो जाता है और आपका एकांतवास आवश्यक

है; अन्यथा आपके भीतर बेकार के उत्पात अपना प्रभाव डालना शुरू कर देंगे, क्योंकि आपके शरीर के चक्र खुले हुए हैं।

इसलिए गुरु को अनेक विधियों द्वारा आपके शरीर के साथ बहुत कुछ करना पड़ता है। यह उसका काम है कि नई विधियों का पता लगाए, क्योंकि पुरानी विधियां काम नहीं देतीं। यह इसलिए कि जितना अधिक आप जानने लगते हैं, उतना ही अधिक आप अपने प्रति सचेत हो जाते हैं। इसलिए नयी विधियों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है और सिर्फ ज्ञानी ही नई विधियों का प्रयोग कर सकता है। वे सभी जो स्वयं ज्ञानी नहीं हैं और लोगों को दीक्षित कर रहे हैं, उनका पुरानी विधियों पर निर्भर करना जरूरी है, क्योंकि नई विधियों के प्रयोग की क्षमता उनमें नहीं है। उन्हें पुरानी विधियों की सार्थकता का भी कोई पता नहीं होता। वे सिर्फ बाहरी स्थितियों के बारे में ही जानते हैं। इसलिए वे हठयोग और प्राणायाम ही जारी रक्खेंगे, वे उसे ही चलाते रहेंगे। हरेक ज्ञानी से दुनिया को नई विधियां प्राप्त होती हैं। इसके अलावा नई विधि प्राप्त नहीं हो सकती और हर नये युग में नई विधियों की जरूरत पड़ती है, क्योंकि युग-बोध बदल जाता है।

इस तरह आपके शरीर से संबंधित गुरु के बहुत से काम हैं, जो कि प्रारंभ है। और इसमें दिक्कत यह है कि इसके बारे में आपको कुछ भी मालूम नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए गुरु के पास होना, आश्रम में रहना, गुरु के साथ सोना-उठना आदि बहुत महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि ऐसी हालत में गुरु के काम के लिए आपका शरीर बिना आपकी जानकारी के सुगमता से सक्रियता के लिए उपलब्ध हो सकता है। शरीर के रूपान्तरण के कार्य को पूरा करने के लिए गुरुओं को मादक-द्रव्यों द्वारा आपको बेहोश भी करना पड़ता था। एनेस्थेसिया का प्रयोग सिर्फ शल्य-चिकित्सक ही नहीं करते, गुरुओं ने भी अपने तरीके से इसे काम में लिया है। जब आप पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं, तब वे काम कर सकते हैं। और जो काम एक साल में भी पूरा नहीं किया जा सकता, वह क्षण भर में संभव हो सकता है। क्योंकि तब सही उपयोगी स्थान को छुआ जा सकता है, इसको घुमाया जा सकता है, उसको बदला जा सकता है। पूरे प्रवाह को बदला जा सकता है।

काम-केन्द्र: ऊर्जा का स्रोत

बातें और भी मुश्किल हो जाती हैं, क्योंकि जो ऊर्जा काम में लानी है, वह काम-केन्द्र में होती है। यह और भी कठिन हो जाता है, पूरी पेचीदगी का

एक टुकड़ा यह भी है। मैं समय के बोध, मौत के खयाल और काम के प्रति जागरूकता की बात कह रहा हूं। ये सभी एक-एक टुकड़े हैं। आप जितने अधिक मौत के खयाल से भरे होंगे, उतना ही अधिक काम को आप महसूस करेंगे; क्योंकि काम शमन करने वाला है। जिन्दगी का प्रारंभ काम है और उसका अंत है मृत्यु। यदि आप मृत्यु के बोध से अत्यधिक भरे हुए हैं, तो काम के बारे में आप अधिक जागरूक हो जाएंगे। सिर्फ मृत्यु-बोध से रिक्त समाज ही काम के प्रति बेखबर हो सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे काम-भावना से रहित होंगे, बल्कि यह है कि वे उससे बेखबर होंगे। यह उनके लिए एक प्राकृतिक घटना मात्र होगी। आप पिछड़ी जाति की किसी औरत से उसके स्तन को स्पर्श कर, उसके बारे में पूछताछ करेंगे, तो उसके जवाब में कहीं भी अनैतिकता, शरीर-बोध या काम-प्रसंग बिलकुल भी नहीं मिलेगा। वह कहेगी कि यह बच्चों को दूध पिलाने के लिए है।

काम-केन्द्र में छिपी हुई शक्ति के प्रति हम इतने जागरूक हो गए हैं कि हर घड़ी उसकी फिक्र करते रहते हैं। हम इतने अधिक तनावग्रस्त हैं कि कोई मदद कर पाना अधिक से अधिक कठिन होता जा रहा है। मैंने बहुत-सी विधियां कायम की हैं और अनेक रूपों में बहुत-सी विभिन्न बातें मुझे करनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिए "संभोग से समाधि की ओर" विषय पर मैंने इतनी विस्तृत बात की है, वह सिर्फ आपके तनाव को शिथिल करने के अभिप्राय से कही है। यदि आप अपने काम-केन्द्र के सम्बन्ध में स्वाभाविक सहजता में हो सकते हैं, यदि तनावरहित हो सकते हैं, तो शक्ति-प्रवाह को ऊर्ध्वगामी किया जा सकता है। गुरु के लिए यह प्राथमिक आवश्यकता की बात है कि वह शारीरिक रूपान्तरण में आपकी मदद करे। इसमें रूपान्तरण आवश्यक है, क्योंकि एक नई घटना आपके शरीर में घटित होने को है। नये भावी-विस्फोट के लिए जो घटने वाला है, अवतरित होने वाला है और नई शक्ति जो आपकी मेहमान बनने वाली है, उसके लिए शरीर को तैयार कर लेना आवश्यक है। इसलिए आपको इसे मेजबान बनाना है। पूरी व्यवस्था में रद्दो-बदल जरूरी हो गई है।

यह हमारी जीने की साधारण व्यवस्था काम नहीं दे सकती यह एक जैविक तरीका है। शरीर का यह ढांचा, शरीर की यह व्यवस्था, जैविक है। इसका उपयोग तो सिर्फ काम के वाहन के रूप में है। पूरी प्रक्रिया बस इसे बनाये रखने की है। जहां तक प्रकृति का सवाल है, इससे अधिक आपके शरीर

से कुछ अपेक्षा भी नहीं रखी जा सकती। इसलिए उसी प्रकार का सारा इंतजाम है। अब आप सिर्फ अपनी वंश-परंपरा को ही कायम रखना नहीं चाहते, आप पूरी जैविक प्रक्रिया को बदलना चाहते हैं और एक बिलकुल नया आधार निर्मित करना चाहते हैं, जो जैविक नहीं पूर्णतया आत्मिक होगा। शरीर के पूरे ढांचे में बदलाहट आवश्यक है।

विचार-संप्रेषण एवं स्वप्न

इस तरह गुरु को आपके शरीर के सम्बन्ध में बहुत से काम करने पड़ते हैं, उससे भी ज्यादा आपकी भावनाओं के बारे में और फिर उससे भी अधिक काम आपकी समझ की बाबत करना होता है। यह सभी का जाना-पहचाना, आपके बोध का, आपकी चेतना का हिस्सा है। दीक्षा में गुरु को इस ऊपरी हिस्से के लिए भी कुछ काम करने होते हैं। लेकिन भीतरी गुप्त हिस्सा भी है। उसके सम्बन्ध में काम पूरा करने के माध्यम आपके स्वप्न, विचार-संप्रेषण विधि (टेलेपेथी), कल्पना-शक्ति, और गुप्त अंतर-संबंध द्वारा बातचीत के तरीके हैं। आपकी बुद्धि को सीधे शान्त किया जा सकता है। इसके सम्बन्ध में बातचीत की जा सकती है और इसे शान्त किया जा सकता है। इसके लिए तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं और इसे सीधा शान्त किया जा सकता है; लेकिन आपकी भावनाओं को नहीं। इनके साथ किसी को भी परोक्षरूप से ही काम करना पड़ता है। विशेष स्थितियां पैदा करके और खास प्रकार का वातावरण तैयार करके ही कोई आपकी भावनाओं में बदलाहट पैदा कर सकता है, उन्हें रूपान्तरित कर सकता है। लेकिन यह भी बाहरी है। आपकी बुद्धि, आपकी भावनाएं, आपका शरीर, ये सभी आपके शरीर के बाह्य आवरण हैं। आप भीतर रहते हैं। आपका अस्तित्व और गहरे में भीतर है। उस अस्तित्व को भी रूपान्तरित करना पड़ता है। अज्ञात, गुप्त मार्गों से विचार-संप्रेषण के जरिये यह काम पूरा किया जाता है। आपके स्वप्नों को काम में लिया जा सकता है, उनका उपयोग किया जाता है। वास्तव में साधारण रूप से ऐसा होता है कि आपको अपने स्वप्नों का पता भी न चले, परन्तु आपके गुरु को वे पूरी तरह ध्यान में होते हैं। और आपकी जाग्रत अवस्था से आपके स्वप्नों में उसकी अधिक रुचि होती है। आपकी तथाकथित जागी हुई चेतना झूठी है। वह वास्तविक नहीं है। आपका इसमें उद्घाटन, प्रकटन नहीं हो पाता। आप सिर्फ अभिनय करते हैं। आपके स्वप्न अधिक वास्तविक होते हैं।

फ्रायड सिर्फ स्वप्नों के विश्लेषण का उपयोग करता था, क्योंकि उसे रहस्यमय जीवन का कोई राज़ ज्ञात हो गया था। रहस्यवादियों के किसी वर्ग से कोई सूत्र किसी तरह बाहर निकल गया। उसने उसको काम में लिया और एक पूरा विज्ञान खड़ा कर दिया। हालांकि वह सीधे आपके स्वप्न के बारे में स्वयं कुछ भी नहीं जान सकता था। आपके स्वप्नों के बारे में सभी बातें बताने के लिए, उनको याद कराने के लिए, उनके सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए उसे आपको राजी करना पड़ता था। इसके बाद ही वह उनका विश्लेषण कर पाता था। लेकिन दीक्षा में गुरु को आपके स्वप्नों के बारे में सब ज्ञात होता है। वह आपके स्वप्नों में प्रविष्ट हो सकता है। आपके स्वप्नों का वह साक्षी हो सकता है और इस तरह आपके बारे में बहुत-सी गुप्त बातों को वह जान लेता है, जिनका आपको कुछ पता नहीं होता। एडगर केयसी स्वयं पर गहरी-निद्रा का प्रयोग करने में सफल हो गया था और उस अवस्था में उसे आप अपने स्वप्न के सम्बन्ध में थोड़ा बता दें। आपके स्वप्न की कुछ कड़ियां हमेशा आपको अज्ञात होती हैं। वह अपनी अचेतन अवस्था में आपके स्वप्न में प्रवेश कर जायगा। वह आपके स्वप्न-वृत्तान्त को पूरा देख सकता था। फिर वह आपको आपके स्वप्न की खोई हुई कड़ियों के बारे में पूरा बता देगा। यह आपका पूरा स्वप्न है और आप अचंभे में पड़ जाएंगे, क्योंकि सुबह तक अपना पूरा स्वप्न किसी को भी याद नहीं रहता। यह असंभावना है। जिस क्षण चेतन मन हमारा उत्तरदायित्व संभालता है, वह सारी बातों को तोड़-मरोड़ कर रख देता है। क्योंकि ये सभी सूचनाएं अचेतन मन से आई हुई होती हैं। ये चेतन मन के खिलाफ होती हैं, वह इन्हें विकृत कर देता है, इनके मतलब दूसरे निकाल लेता है। इनमें से वह कुछ गायब कर देता है, इनमें कुछ जोड़ देता है और फिर सब कुछ बिलकुल वाहियात मालूम पड़ता है। आप कहते हैं कि यह तो एक बेतुका स्वप्न मात्र है। कोई भी स्वप्न निरर्थक नहीं होता, आपके जागने से अधिक गूढ़ मतलब होता है आपके स्वप्नों का।

इसीलिए गुरु को आपके स्वप्नों के साथ काम करना पड़ता है। और जब तक वह आपके स्वप्नों के साथ काम नहीं कर सके, वह आपके जागरण के बारे में भी कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि आपके भीतर स्वप्नों के निर्माण का स्रोत ही सब कुछ है। उसे नष्ट करना पड़ता है। उसे आपकी चेतना से निर्मूल करना होता है। स्वप्न की पूरी यांत्रिकता को ही छिन्न-भिन्न करना पड़ता है। पूरा जड़ से उखाड़ फेंकना होता है। जब यह पूरी तरह से उखाड़ दिया जाता

है, तो आपका पहला अनुभव यह होता है कि अब स्वप्न विसर्जित हो गए हैं। फिर आपको यह महसूस होता है कि आपकी नींद खो गई है। नींद में आप होंगे, परंतु आपको उसका होश बना रहेगा। सुबह शरीर ताजगी महसूस करेगा, लेकिन आपको यह ज्ञात होगा कि आप पूरी रात होश में रहे। अगर स्वप्न विसर्जित हो जाते हैं, तो नींद भी गायब हो जाती है।

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि स्वप्नों के बराबर चलते रहने से आपको निद्रा में होने के लिए मदद मिलती है। स्वप्न न रहें, तो आप सो नहीं सकते। आपका स्वप्न देखना निर्बाध निद्रा में सहायक होता है। मान लीजिये कि आपको नींद में प्यास महसूस हो रही है, तो आपकी नींद टूट जाएगी, परंतु आपका शरीर इसे खत्म कर देगा। आपका शरीर कहेगा, "उठो कुछ पी लो, प्यास लगी है।" लेकिन स्वप्न-पद्धति आपकी पूरी सहायता करेगी, वह कहेगी कि ठीक है। स्वप्न-पद्धति एक स्वप्न निर्मित करेगी। आप स्वप्न में पानी पी रहे हैं। अब नींद में खलल डालने की कोई आवश्यकता नहीं रही। अब आप सोये रह सकते हैं। जो आप चाहते थे, वह आपको मिल गया, स्वप्न ने विकल्प तैयार कर दिया और अब नींद को जारी रखा जा सकता है। आपकी घड़ी की घंटी बज रही है, पांच बज गए और अब आपको उठना है। स्वप्न-पद्धति एक स्वप्न खड़ा कर देगी। आप मंदिर में खड़े हैं और घण्टियां बज रही हैं। बाहर बजती हुई घण्टी अब स्थानान्तरित हो गई और वह आपके स्वप्न का हिस्सा बन गई है। घंटी अब मंदिर में बज रही है और अब आपको जगने की आवश्यकता नहीं। आप अब नींद में रह सकते हैं। आपकी नींद को जारी रखने में स्वप्न बहुत सहायक हैं, वरना आप सो नहीं सकते। आपकी नींद बार-बार टूट जायगी, क्योंकि ऐसी बहुत-सी बातें बाहर होती रहती हैं, जो आपका शरीर बर्दाश्त नहीं कर सकता। एक मच्छर भी आपकी नींद खराब देगा, लेकिन स्वप्न वहां भी आपको मदद पहुंचा सकते हैं। एक स्वप्न निर्मित कर सकता है और मच्छर की गूंज स्वप्न में संगीत बन जायगी। फिर आप यह स्वप्न देखते हुए नींद में लिप्त रह सकते हैं।

इसलिए स्वप्न देखने वाली इस चेतन प्रक्रिया को पूरी तरह से उखाड़ फेंकना जरूरी है और यह काम गुरु को ही करना पड़ता है। और अब वह इस स्वप्न-यंत्र को पूरी तरह नष्ट कर देता है। और तब ही वे अंतर पट खुल पाते हैं और अब आपसे वह सीधा संपर्क स्थापित कर सकता है। अब भाषा की कोई आवश्यकता नहीं, शब्दों की भी कोई जरूरत नहीं। वह संवादों को सीधे

आप तक भेज सकता है, माध्यमों की आवश्यकता नहीं। और जब बिना शब्दों के सीधा सम्भाषण संभव हो पाता है, केवल तब ही सत्य आपके समक्ष प्रगट किया जा सकता है; वरना नहीं किया जा सकता। इसलिए आपकी स्वप्नद्रष्टा चेतना के साथ, उसके रूपान्तरण के लिए जो काम किया जाता है, वह गुरु के कार्य का सर्वाधिक गोपनीय भाग है।

कोई सूत्र कभी किसी को मिल जाय, और ऐसा बहुत बार हो चुका है। एक सूत्र के ऊपर विज्ञान खड़ा कर लिया गया है, एक खास और महत्वपूर्ण बात पर जो इस गुह्य-दुनिया से किसी तरह छिटक गई और किसी को मिल गई। तो इस पर आप एक विज्ञान निर्मित कर सकते हैं। यह हमेशा अधूरा और अशुद्ध होगा। फ्रायड का विश्लेषण कभी पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि उसे पूरी बात का पता ही नहीं है। वह आया और उसे अनायास ही कहीं से कोई सूत्र हाथ लग गया। उसने इसी पर पूरी तरह से काम करना शुरू कर दिया, परन्तु यह सूत्र तो एक हिस्सा मात्र है। पूरी बात का उसे कुछ पता नहीं है।

जब स्वप्नद्रष्टा चेतना पूरी तरह विलीन कर दी जाती है, तब वास्तविक रहस्यमय गुह्य-कार्य शुरू होता है। आपका हाथ थामे गुरु आपको कहीं भी ले जा सकता है, किसी भी वास्तविकता एवं इस विश्व की किसी भी गहराई तक। लेकिन इसके बारे में बातचीत संभव नहीं हो सकती, उसके बारे में कोई बहस नहीं की जा सकती। गुरुओं ने स्वर्ग, नर्क, ब्रह्माण्ड के ओर-छोर, दूसरे ग्रहों तथा किसी भी विशाल साम्राज्य तक अपने शिष्यों का मार्ग-प्रदर्शन किया है। लेकिन यह सिर्फ आपकी स्वप्नद्रष्टा चेतना के पूर्ण विसर्जित होने पर ही संभव हो सकता है, आप कुछ भी प्रक्षेपित न कर सकें, सिर्फ एक परदा मात्र रह गया हो। तब यह दुनिया आपके लिए दूसरी ही होगी, क्योंकि तब आप सर्वथा भिन्न होंगे। यह दुनिया वही रहेगी, लेकिन आप कुछ भी प्रक्षेपित नहीं करेंगे।

और भी बहुत-सी बातें हैं जिनके बारे में यदि आपकी रुचि है, तो आपको भीतर प्रवेश करना होगा। उन बातों के बारे में आपको सूचित नहीं किया जा सकता। आप उन्हें जान सकते हैं। मैं आपकी मदद कर सकता हूं। मैं आपके साथ मेहनत कर सकता हूं। भीतरी तलों पर मैं आपको ढकेल सकता हूं, लेकिन उसके बारे में मैं आपको कुछ बता नहीं सकता। यह सभी कुछ जो मैं आपको बता रहा हूं, वह भी पहले जितना बताया गया है, उससे बहुत अधिक है। लेकिन मैं आपको बहुत-सी बातें बता सकता हूं, जो पहले वर्जित

थीं, क्योंकि मैं हमेशा कुछ खास कड़ियां अलग कर देता हूं। आप उन्हें जोड़ नहीं सकते।

हमेशा कुछ अनकहा रह जाता है, कुछ शेष बचा रह जाता है। मेरे लिए नहीं, किंतु आपके लिए। यह हमेशा ही बचा रह जाता है, यदि वह घटना आपके लिए भी घटित हो। तब सभी बातें पूरी हो जायंगी, सभी कड़ियां जुड़ पायेंगी। इसलिए बहुत-सी कड़ियों के बारे में आपसे बात करता हूं। उनमें बहुत-सी कड़ियां हमेशा छूटी हुई रह जाती हैं, जो कि सिर्फ आपकी कोशिश से पूरी हो सकती हैं। कड़ियों के बिना जोड़े ही मैं इनके बारे में बात करता रहता हूं, ताकि आप दूसरी तरह से मेहनत करते रहें। जितनी अधिक मेहनत आप करेंगे, उतनी ही अधिक बात मैं खोई हुई कड़ियों के बारे में करूंगा। किन्तु जो मुख्य कड़ी है, उसके बारे में कोई बात संभव नहीं हो सकती। उसका सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। लेकिन उसकी अनुभूति में आपकी मदद करने के लिए मैं हमेशा तैयार हूं, और यह चीज कुछ ऐसी ही है कि इसकी सिर्फ अनुभूति ही संभव हो सकती है।

समर्पण एकमात्र आवश्यकता

आप अपना कर्तव्य पूरा करें और खयाल रहे कि आप अपना कर्त्तव्य निबाहने में समर्थ हैं, जहां कहीं भी आप समर्पित होने में सफल होंगे, गुरु मौजूद हो जायगा। गुरु मौजूद ही है। गुरु हमेशा ही मौजूद होता है। दुनिया में गुरुओं की कमी कोई कमी नहीं रही। हमेशा यहां शिष्यों की कमी रही है। लेकिन इसके पहले कि कोई समर्पित हो, कोई गुरु कुछ भी शुरू नहीं कर सकता। इसलिए जहां भी आपको समर्पण का मौका मिले, उसे बेकार न जाने दें। अगर आपको समर्पित होने के लिए कुछ भी नहीं मिले, तो अस्तित्व के समक्ष ही समर्पित हो जायं। किंतु जब भी समर्पण की घड़ी आ जाए, उसे व्यर्थ में न गंवाएं। क्योंकि उस समय आप सतह पर हैं, जहां आप नींद और जागरण के बीच की स्थिति में होते हैं, सिर्फ समर्पित हो जायं। अगर आपको कोई मिल जाए तो अच्छा ही है। यदि आपको कोई नहीं मिले, तो ब्रह्माण्ड के सामने समर्पित हो जायं। और गुरु प्रगट हो जाएगा। वह आ जाएगा। जब भी समर्पण फलित होता है, वह दौड़ता हुआ आता है। आप शून्य होते हैं, आप खाली होते हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से जैसे ही आप रिक्त होते हैं आध्यात्मिक शक्ति आपकी ओर प्रवाहित होती है और आपको भर देती है। इसलिए यह

हमेशा ध्यान रहे कि जब भी आपको समर्पित होने जैसा लगे, तो उस क्षण को हाथ से न निकलने दें। शायद वह क्षण दुबारा लौटकर न आ पाए। इसके वापिस लौटने में फिर सदियाँ गुजर जाएं और जीवन व्यर्थ नष्ट होता रहे। जब भी घड़ी आ जाए, आप समर्पित हो जाएं।

लेकिन दिमाग की एक होशियारी है। गुस्सा यदि आपको आए, तो आप उसी क्षण क्रोधित हो जाएंगे। परंतु आपको यदि अगर समर्पित होने का भाव घेरे, तो इस बारे में आप चिंतन करने लगेंगे, इसके बारे में आप योजना बनाएंगे, आप इंतजार करेंगे, रुके रहेंगे। और दिमाग के साथ सिर्फ यह एक क्षण होता है, जबकि वह परिधि पर होता है। इसलिए परमात्मा को, चाहे अन्य किसी को, या फिर किसी वृक्ष को ही समर्पित हो जाएं। क्योंकि खास बात यह नहीं है कि आप किसे समर्पित हो रहे हैं, बल्कि महत्वपूर्ण तो समर्पित होना है। किसी पेड़ को समर्पित हो जायं और वह पेड़ आपका गुरु हो जाएगा। आपको पेड़ से बहुत-सी बातें ज्ञात हो जाएंगी, जो किसी शास्त्र से आपको ज्ञात नहीं हो सकतीं।

किसी पत्थर को समर्पित हो जायं और वह पत्थर देवता बन जाएगा। और पत्थर से आपको इतना ज्ञान मिल जाएगा, जो कोई देवता आपको प्राप्त नहीं करवा सकता। असली बात समर्पित होना है। जब भी समर्पण की घटना घटती है, कोई हमेशा मौजूद हो जाता है, जो आपकी जिम्मेदारी ले लेता है। दीक्षा का मतलब यही होता है।

●●●

फूल, फूल और फूल

★ अतीत में कुछ भी नहीं, कोई कहे तो पीड़ा होती है। जबकि पीड़ा होनी चाहिए अगर कोई कहे कि भविष्य में कुछ नहीं।

★ बहुत-सी पुरानी किताबों को लिखने वाले राजाओं के चापलूस कवि लोग थे।

★ इस देश का भीख मांगना आज परिस्थिति वश नहीं है, बल्कि भाग्यवादिता के कारण है। एक अर्थ में गुलाम होना भी भिखमंगे होने से बेहतर है क्योंकि गुलाम को स्वतंत्र होने की संभावना है लेकिन भिखमंगे की आत्मा ही मर जाती है।

संकलन : स्वामी अगेह भारती, जबलपुर.

संतति नियमन और क्रांति

: एक वैज्ञानिक दृष्टि

● संक्षिप्त संकलन एवं सम्पादन :
'आकुल' राजेन्द्र

पृथ्वी के गर्त और समुद्र की तह से प्राप्त अस्थिपंजरों में से, कुछ ऐसे भी हैं, जिनका आज कोई अस्तित्व ही नहीं है। दस लाख वर्ष पूर्व जिन विशाल सरीसृपकों से पृथ्वी भरी हुई थी, आज बहुत छोटे रूप में छिपकली के अतिरिक्त उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है। उसके पूर्वज जो हाथी से भी दस गुने बड़े और शक्तिशाली थे—आज पृथ्वी से कैसे विलुप्त हो गये ? किसी ने उन पर क्या एटम बम गिराये ? नहीं, वे अपनी संतति के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण खत्म हो गये, क्योंकि भोजन, पानी और 'लिविंग स्पेस' कम पड़ जाने से जीना उनके लिए असम्भव हो गया। ऐसी आमूल नष्ट हो जाने की दुर्घटना भविष्य में मनुष्य जाति पर भी घटित हो सकती है। आज तक तो प्रकृति ने ने निरन्तर जन्म और मृत्यु को संतुलित रखा, किंतु अब दस बच्चे पैदा होते हैं, तो उनमें से मुश्किल से एक मर पाता है, जबकि बुद्ध के जमाने में इसके ठीक विपरीत एक-दो बच्चे ही दस में से जीवित रह पाते थे। आज कुछ मुल्कों में औसत उम्र अस्सी वर्ष से ऊपर पहुंच गयी है, और डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर की उम्र के हजारों लोग हैं। आज अकाल, महामारी आदि से होने वाले सामूहिक निधन को भी रोक लिया गया है, फलतः मृत्यु के बहुत से द्वार बंद होने और जन्म के द्वार पूर्ववत् खुले होने से, जन्म और मृत्यु के बीच पूर्व काल का सब संतुलन विलुप्त हो गया। हीरोशिमा-नागासाकी में एटम बम के गिरने से एक लाख आदमी मरे, तो इस समय लोग एटम बम को खतरा मानते हैं। **लेकिन आज जो लोग समझते हैं, वे कहते हैं कि दुनिया के नष्ट होने की नयी संभावना लोगों के पैदा होने से है, न कि एटम बम से, क्योंकि हम सारी दुनिया में रोज दो लाख आदमी बढ़ा लेते हैं, दो हीरोशिमा रोज पैदा कर लेते हैं।**

यदि इसी तरह जन-संख्या बढ़ती गयी, तो हो सकता है इस सदी के अंत तक मनुष्य को हिलने के लिये भी जगह शेष न रह जायगी और **तब सभाएं करने की जरूरत नहीं रह जायगी, क्योंकि तब हम लोग चौबीस घंटे सभाओं में होंगे।** और आज आदमी को न्यूयार्क और बंबई में चौबीस घंटे हिलने की भी सुविधा नहीं, अवकाश नहीं। इसलिए **मनुष्य जाति को जन-संख्या के विस्फोट से बचाने के लिए सभी विचारशील लोग यही कहेंगे कि जिस भांति हमने मृत्यु को रोका है, उसी भांति जन्म को रोकना भी बहुत महत्वपूर्ण है, बहुत हितकर है।**

पहली और सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मनुष्य जीने के लिये एक 'लिविंग स्पेस' (खुली जगह) चाहता है, अन्यथा इसके अभाव में मनुष्य विक्षिप्त होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि हम देखते हैं कि बंदर मुक्त होकर किस तरह जंगल में विचरता है, नाचता है और यदि पचास बंदरों को एक मकान में बंद कर दिया जाय, तो उनका पागल होना शुरू हो जायगा। आज महानगरी में 'लिविंग स्पेस' खो गयी है और एक-एक कमरे में दस-दस, बारह-बारह आदमी बंद हैं, जो वहीं पैदा होते हैं, वहीं भोजन करते हैं, वहीं बीमार पड़ते हैं और वहीं मर जाते हैं। आप कमरे में अकेले होते हैं तो अपने आप में एक मुक्ति अनुभव करते हैं, किन्तु दस लोग आकर बैठ भर जायँ, आप के मस्तिष्क में एक अनजाना भार, एक तनाव बढ़ना शुरू हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, चारों ओर बढ़ती हुई भीड़ प्रत्येक व्यक्ति के मन पर एक अनजाना भार है। बूढ़ा भी बाथरूम में बच्चे जैसा उन्मुक्त हो जाता है, आइने के आगे बच्चे जैसी जीभ निकालता है और नाच भी लेता है, किंतु अगर उसे पता चल जावे कि कोई छेद से देख रहा है, तो वह फिर एकदम बूढ़ा हो जावेगा और उसका बचपन खो जावेगा, वह फिर सख्त हो जावेगा।

मनुष्य की आत्मा के जो भी श्रेष्ठतम फूल हैं, वे एकांत में ही खिलते हैं, आज तक भीड़-भाड़ में कोई श्रेष्ठ काम नहीं हुआ। सभी प्रकार की कलाएं काव्य, संगीत आदि अथवा परमात्मा की प्रतिध्वनि एवं प्रतिरूप—सब एकांत और अकेले में ही फलित होती हैं, उनके फूल खिलते हैं। चारों ओर भीड़ के अनजाने दबाव में सब फूल मुर्झा जायेंगे, लुप्त हो जायेंगे, क्योंकि आदमी जितने बढ़ते हैं, व्यक्तित्व उतना ही कम हो जाता है। भीड़ में नाम मिट जाता है, 'इन्डीवीजुएलिटी' मिट जाती है, व्यक्तिगत तादात्म्य खत्म हो जाता है और आदमी भीड़ का अंग हो जाता है। और इसीलिए भीड़ बुरे काम कर

सकती है, किंतु अकेला आदमी इतने बुरे काम नहीं कर सकता। अकेला आदमी—कितना ही कट्टर हिन्दू क्यों न हो—मस्जिद जलाना चाहे तो नहीं जला सकता। आगजनी, हत्या, बलात्कार आदि करना हो तो अकेला आदमी बहुत कठिनाई अनुभव करता है, किंतु भीड़ एकदम सरलता से करवा लेती है, क्योंकि भीड़ में कोई व्यक्ति नहीं रह जाता, तो व्यक्तिगत दायित्व भी समाप्त हो जाता है।

अल्बर्ट हिटलर दस-पंद्रह लोगों की सहायता से हुकूमत पर पहुंचा। वह जब किसी सभा में बोलता था, तो विभिन्न स्थानों पर तैनात उसके आदमी योजना-बद्ध रूप में ताली बजाते थे, और बाकी भीड़ भी उनके साथ हो जाती थी। कभी आपने खयाल किया है कि आप जब भीड़ में हंसते अथवा ताली बजाते हैं, तो आप स्वयं यह नहीं करते, भीड़ ऐसा करवा लेती है। भीड़ बड़ी संक्रामक होती है, क्योंकि वह व्यक्ति को मिटाकर उसकी आत्मा पोंछ डालती है। अगर पृथ्वी पर भीड़ बढ़ती गयी, तो व्यक्ति विदा हो जायेगा, फिर चाहे विज्ञान की सहायता से किसी तरह भोजन का हल ढूंढ़ भी लिया जावे, लेकिन आत्मा का हल नहीं हो सकेगा। इसलिए मेरे सामने परिवार नियोजन केवल आर्थिक मामला नहीं है, बहुत गहरे अर्थों में धार्मिक मामला है।

अभी समुद्र भरे पड़े हैं और वैज्ञानिक प्रयोग यह कह रहे हैं कि समुद्रों के पानी से बहुत भोजन निकाला जा सकता है। आखिर मछली भी, जो कि हमारा भोजन है, पानी से ही भोजन ले रही है। भोजन तो जुटाया जा सकेगा, लेकिन अगर आदमी की भीड़ पृथ्वी पर कीड़े-मकोड़े की तरह बढ़ गयी, तो आदमी की आत्मा खो जावेगी और उसे आत्मा को देने का विज्ञान के पास कोई उपाय नहीं है। भीड़ की बाढ़ के कारण एक-एक व्यक्ति पर चारों तरफ से कितना अनजाना दबाव पड़ेगा? हमें अनजाने दबाव कभी दिखाई नहीं देते—हमें पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण कितने जोर से खींच रहा है या वायुमंडल का हमारे ऊपर कितना दबाव हर क्षण पड़ रहा है—क्योंकि हम बचपन से इसके आदी हो गये हैं।

इन भौतिक दबावों के अतिरिक्त और बहुत से अनजाने मानसिक दबाव भी है। सिर्फ लोगों की मौजूदगी ही हमें परेशान कर देती है और अगर यह भीड़ बढ़ती ही चली जाती है, तो एक सीमा पर पूरी मनुष्यता के 'न्यूरोटिक' (विक्षिप्त) हो जाने का डर है, क्योंकि आधुनिक मनोविश्लेषण यह कहता है

कि ९०/. लोग जो पागल होते हैं—भीड़ का दबाव न सह पाने के कारण ही पागल होते हैं—भीतरी दबाव और तनाव बढ़ने से मस्तिष्क की नसें फट जाती हैं। इसलिए बहुत गहरे में सवाल सिर्फ मनुष्य के शारीरिक बचाव (फिजिकल सरवाइवल) का ही नहीं है, उसके आत्मिक बचाव का भी है। जो लोग यह कहते हैं कि संतति नियमन जैसी चीजें अधार्मिक हैं, उन्हें धर्म का पता ही नहीं है, क्योंकि धर्म का पहला सूत्र है—**व्यक्ति को व्यक्तित्व मिले, उसके पास अपनी एक आत्मा हो, कहीं वह भीड़ का हिस्सा ही न रह जाय**। जैसे-जैसे भीड़ बढ़ेगी, वैसे-वैसे व्यक्ति की कम, भीड़ की ज्यादा फिक्र करनी पड़ेगी और फिर अन्ततः व्यक्ति का सवाल विदा हो जायेगा, व्यक्तिगत रुचि-अरुचि गौण हो जायगी और भीड़ के अंश के रूप में ही आपको भोजन, कपड़ा तथा अन्य सुविधायें दी जा सकेंगी।

जापान में आबादी की बाढ़ के कारण अब वहाँ पलंग भी 'मल्टी स्टोरीड' बनने लगे हैं और साथ-साथ बिछाये जाते हैं। लोगों को पलंग की निश्चित नंबर की मंजिल में चढ़कर सोना पड़ता है। रात को कोई अकेला सो भी नहीं सकता, भीड़ वहाँ भी मौजूद है। एक पलंग पर दस आदमी यदि सोयें तो वह घर कम रह गया—रेलवे कम्पार्टमेंट ज्यादा हो गया। इसके बाद भी मामला हल नहीं होगा अगर यह भीड़ बढ़ती जाती है, तो वह सब तरफ व्यक्ति का 'एनक्रोचमेंट' करेगी, घेरेगी और हमें ऐसा कुछ करना पड़े कि व्यक्ति धीरे-धीरे खोता चला जाय, और उसकी चिंता ही बंद कर देनी पड़े।

दूसरी बात ध्यान देने योग्य है— आज से पांच हजार वर्ष पूर्व मनु के समय की सामाजिक व्यवस्था एवं जीवन की सारी परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन आ गया है, किंतु पुराने नियमों को अभी भी मान्यता मिली हुई है। आज भी बच्चा पैदा होता है तो बैंड बजवाये जाते हैं। पहले यह बिलकुल ठीक बात थी, क्योंकि तब कबीलों को अपनी आत्म-सुरक्षा के लिए अधिक संख्या में होना बहुत जरूरी था—एक व्यक्ति का बढ़ जाना बड़ी ताकत थी, और संख्या को बड़ा गौरव दिया जाता था। तब ज्यादा संख्या में होने में जीतने की ज्यादा सम्भावना थी, किंतु आज ज्यादा संख्या में होना आत्मघाती है। आज कोई समझदार मुल्क अपनी संख्या नहीं बढ़ा रहा है, बल्कि फ्रांस में तो संख्या गिरने तक की सम्भावना हो गई है। अगर दुख, गरीबी, बीमारी, पागलपन आदि चाहिए, तो अधिकतम बच्चे पैदा करना उचित है। जब ५–६ बच्चों का बाप

भी आगे बच्चे पैदा कर रहा है, तो वह बच्चे का बाप नहीं, दुश्मन है— यह बेटे के प्रति प्रेम नहीं, सिर्फ नासमझी है।

आप दुनिया के समझदार मां-बाप हो सकते हैं, इस बात को सोचकर कि आप कितने बच्चे पैदा करेंगे। स्थिति बिलकुल बदल गई है। आज इस जगत में सुख एवं मंगल की कामना करने वालों को यह फिकर करनी होगी कि आबादी निरंतर कम होती चली जाय। हम अपने को अभागा मान लेते हैं, लेकिन हमें इसका बोध नहीं। किसी ने १९४७ में बंटवारे के समय सोचा भी न होगा कि हम बीस साल में एक पाकिस्तान के बराबर लोग फिर पैदा कर लेंगे। यह संख्या इतने अनुपात में बढ़ती जा रही है और दुःख, दारिद्र्य, दीनता और बेकारी बढ़ रही है, तो हम परेशान होते हैं, उससे डरते हैं और कहते हैं कि बेकारी, बीमारी नहीं चाहिए, हमें जीवन की सारी सुविधाएं मिलनी चाहिए— हम यह सोचते भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। हमारे धर्म-गुरु समझाते हैं कि संतति नियमन की बात ईश्वर का विरोध है।

तो क्या इसका मतलब यह नहीं हुआ कि ईश्वर चाहता है कि लोग दीन रहें, भीख मांगें, भूखों मरें, सड़कों पर नंगे घूमें। लेकिन ईश्वर ऐसा कैसे चाह सकता है! हां, धर्म-गुरु जरूर चाह सकते हैं, **क्योंकि दुनिया में जितना दुःख बढ़ता है, धर्म-गुरुओं की दुकानें उतनी ही ठीक चलती हैं। सुखी और आनंदित आदमी धर्म-गुरु की तरफ नहीं जाता। वह धर्म की खोज कर सकता है, लेकिन धर्म-गुरु की नहीं।** दुःखी और परेशान आदमी आत्म-विश्वास खो देता है और किसी का सहारा एवं मार्ग-दर्शन चाहता है, तो धर्म-गुरु के चरणों में जाता है। धर्म तो सुखी हो जाने के बाद भी टिकेगा, लेकिन धर्म-गुरु नहीं चाहेगा कि दुःख खत्म हो जायें।

एक रात किसी होटल में कुछ लोग खूब खा-पीकर लौटने को हुए तो मैनेजर ने कहा कि आप लोगों के आने से हम बहुत आनंदित हुए—इसी तरह आप हमेशा कृपा किया करें। उन लोगों ने कहा—"हमारा धंधा ठीक चलता रहे, हम रोज आते रहेंगे। क्या करें, कभी-कभी ऐसा होता है कि गांव में कोई मरता ही नहीं और लकड़ी बिलकुल नहीं बिकती। किंतु जिस दिन अधिक लोग मरते हैं, चिता के लिए हमारी लकड़ी अधिक बिकती है और हम लोग चले आते हैं।"

जब मरीज ज्यादा होते हैं, तो डाक्टर लोग भी कहते हैं कि सीजन अच्छा चल रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है और अगर किन्हीं लोगों का धंधा

लोगों के बीमार होने से चलता हो, तो फिर बीमारी मिटानी मुश्किल हो जायेगी। डाक्टरों का व्यवसाय बीमारी पर खड़ा है, अतः डा० ऊपर से तो बीमार का इलाज करेगा, लेकिन भीतर आकांक्षा होगी कि बीमार, बीमार ही बना रहे। इसलिए रूस में क्रांति के बाद डाक्टर के काम को 'नेशनलाइज' कर दिया, प्राइवेट प्रेक्टिस बिलकुल बन्द कर दी। इसी तरह चीन में माओ ने आते ही वकील के धंधे को 'नेशनलाइज' कर दिया, क्योंकि वकील का धंधा खतरनाक है, 'कान्ट्रडिक्ट्री' है।

धर्म-गुरु का धंधा भी बड़ा विरोधी है, वह चेष्टा तो करता है कि लोग सुखी हों, आनंदित हों, लेकिन उसका धंधा लोगों के अशांत, दुखी और परेशान रहने पर निर्भर करता है। इसलिए जब भी दुनिया में दुःख और अनैतिकता बढ़ती है, तो धर्म-गुरु एकदम प्रभावी हो जाते हैं। वे नैतिक उपदेश देने लगते है और सब बातें ईश्वर पर थोप देते हैं, और फिर ईश्वर तो कभी गवाही देने आता नहीं कि उसकी मर्जी क्या है ? इंग्लेंड और जर्मनी में अगर युद्ध हो, तो दोनों देश के धर्म-गुरु (पादरी) एक दूसरे देश के विरुद्ध विजय प्राप्ति के लिए उसी एक भगवान से प्रार्थना करते हैं, ईश्वर पर अपनी-अपनी इच्छा थोपते हैं। अच्छा हो कि हम ईश्वर पर अपनी इच्छाएं न थोपें और हम जीवन के बारे में सोचें, समझें और वैज्ञानिक रास्ता निकालें। **यह भी ध्यान रखने योग्य है कि जो समाज जितना समृद्ध होता है, वह उतने ही कम बच्चे पैदा करता है।**

संगीत, साहित्य, चलचित्र, यात्रायें आदि मनोरंजन के विविध साधन अमीर को सहज उपलब्ध होते हैं—उसकी शक्ति बहुत दिशाओं में बह जाती है, जबकि दुखी और दरिद्र इन सबके खर्चीले होने से इनसे वंचित रह जाता है और मुक्त उपलब्ध यौन में ही सुख लेने लगता है—अन्यत्र शक्ति बहाने का उसके पास कोई उपाय नहीं रहता। परिणाम में गरीब आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करता है और उसके बच्चे और गरीब होते हैं, वे और बच्चे पैदा करते जाते हैं, जिससे देश और गरीब होता चला जाता है। किसी भी तरह गरीब आदमी की इस भ्रामक स्थिति को तोड़ना जरूरी है, अन्यथा जीना असम्भव हो जायगा। इस देश में इतनी गरीबी बढ़ गयी है कि कोई मान ही नहीं सकता कि हम जी रहे हैं—अच्छा हो कि कहा जाय कि हम धीरे-धीरे मर रहे हैं।

क्या जीने का इतना ही अर्थ है कि हम दो रोटी खा लें और पानी पीकर कल तक के लिये जी जाते रहे ? नहीं, जीना ठीक अर्थों में 'ओवर-

फ्लोइंग' है—जब समृद्धि हमारे ऊपर से बहने लगे। पौधे को खाद न मिले, ठीक पानी न मिले, तो पौधा जिंदा रहेगा, लेकिन फूल नहीं खिलेगा—फूल 'ओवर फ्लोइंग' है, क्योंकि पौधे में जब आवश्यकता से अधिक शक्ति इकट्ठी हो जाती है—कुछ अतिरिक्त इकट्ठा हो जाता है जड़ों, शाखाओं और पत्तों की आवश्यकता से, तब ही फूल खिलता है। फूल जो सुन्दर है, वह इसलिए कि वह अतिरेक है, अतिरिक्त है। और जीवन में भी सभी सौन्दर्य एवं आनन्द भी अतिरेक—ओव्हर फ्लोइंग—है। राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध सभी राजाओं के बेटे हुए हैं, किंतु ये फूल किसी गरीब के यहाँ नहीं खिल सकते। गरीब सिर्फ जी सकता है, उसका जीना इतना न्यूनतम है कि उससे फूल खिलने का कोई उपाय नहीं है। ताजमहल अतिरेक से निकाला हुआ फूल है। संगीत, साहित्य, काव्य आदि जीवन के छोटे-छोटे आनन्द से भी ज्यादा शक्ति जब ऊपर इकट्ठी होती है, वह परम फूल खिलता है परमात्मा का। लेकिन हम रोज अपने को गरीब करने के उपाय करते चले जाते हैं। गरीब के पास अपनी संपत्ति तो है नहीं, वह अपने बेटों में सिर्फ अपनी गरीबी बांटकर चौगुने गरीब समाज में खड़ा कर जाता है। हिंदुस्तान कई सैकड़ों वर्षों से अमीरी नहीं, सिर्फ गरीबी बांट रहा है और समाज रोज दीन-हीन होता जा रहा है, तो गरीब समाज उस फूल के लिए कैसे उपयुक्त बन सकता है।

हाँ, धर्मगुरु सिखाते हैं—ब्रह्मचर्य, पैदाइश कम करने के लिए। अर्थात् गरीब के जीवन में जो मात्र मनोरंजन का साधन उपलब्ध है, उसे भी ब्रह्मचर्य से बंद कर दे—तब तो गरीब आदमी मर ही गया। इसलिए धर्मगुरु की ब्रह्मचर्य की बात कोई नहीं सुनता, खुद धर्मगुरु भी नहीं सुनते अपनी बात। यह बकवास बहुत दिनों चल चुकी, उसका कोई लाभ नहीं हुआ। विज्ञान ने ब्रह्मचर्य की जगह एक नया उपाय दिया—संतति नियमन के कृत्रिम साधन, जिससे व्यक्ति को ब्रह्मचर्य में बंधने की कोई जरूरत नहीं—जो सर्व सुलभ हो सकता है। जीवन के द्वार खुले हैं, दमन की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि यौन प्रवृत्ति के दमन से व्यक्ति किन्हीं अर्थों में सदा के लिए रुग्ण हो जाता है। अगर यौन में निकलने वाली शक्ति किसी और आयाम में प्रवाहित हो जाय तो मुक्त हुआ जा सकता है यौन की वृत्ति से।

एक वैज्ञानिक मुक्त हो जाता है बिना ब्रह्मचर्य के, बिना राम-राम का पाठ किये, क्योंकि उसकी सारी शक्ति, सारी ऊर्जा विज्ञान की खोज में लग जाती है। एक चित्रकार, एक संगीतज्ञ, एक परमात्मा का खोजी भी मुक्त हो

सकता है। लोग कहते हैं ब्रह्मचर्य ज़रूरी है परमात्मा की खोज के लिये, किंतु यह गलत है—हाँ, परमात्मा की खोज पर जाने वाला ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है—उसकी सारी शक्तियां इतनी लीन हो जाती है कि उसके पास यौन की दिशा में जाने के लिए न शक्ति का बहाव बचता है और न आकांक्षा ही। लेकिन अगर हम किसी से कहें कि वह बच्चे रोकने के लिये ब्रह्मचर्य का उपयोग करे, तो यह अव्यावहारिक होगा।

गाँधीजी तथा मुल्क के अन्य महात्मा यही कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का उपयोग करो, किंतु गाँधी जी जैसे बढ़िया आदमी भी ठीक-ठीक अर्थों में ब्रह्मचर्य को कभी उपलब्ध नहीं हुए। वे भी कहते हैं कि दिन में तो नहीं, पर स्वप्नों में सब संयम टूट जाता है और उन्हें जीवन के अंतिम दिनों तक भी शायद अपने ब्रह्मचर्य पर शक रहा।

ब्रह्मचर्य की बात एकदम अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक है। मनुष्य चित्त पर बिना कोई दबाव के कृत्रिम साधनों का उपयोग किया जा सकता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मुल्क का बुद्धिजीवी एवं समझदार वर्ग तो संतति नियमन अपना कर परिवार नियोजित कर लेगा, किंतु गरीब और अनपढ़ आदमी नहीं समझेगा और बच्चे पैदा करता ही चला जायेगा। लम्बे अरसे में परिणाम यह होगा कि बुद्धिमानों के बच्चे कम हो जायेंगे और बुद्धिहीनों के बच्चों की संख्या बढ़ती जायेगी। इसे धर्मगुरु दूसरी तरह उठाते हैं, वे कहते हैं—"मुसलमान, ईसाई, केथोलिक तो सुनते ही नहीं, वे संतति नियमन को धर्म-विरुद्ध मानते हैं। और मुसलमान फिकर नहीं करता, तो हिंदू क्यों फिकर करेगा ? क्योंकि पचास साल में मुसलमान और ईसाई इतने बढ़ जायेंगे कि हिंदू नगण्य हो जायेंगे।" इस बात में भी थोड़ा अर्थ है।

इन दोनों के संबंध में कहना चाहूंगा कि **संतति नियमन अनिवार्य होना चाहिये, ऐच्छिक नहीं, क्योंकि जब तक हम एक-एक आदमी को समझाने की कोशिश करेंगे, तब तक इतनी भीड़ हो चुकी होगी कि संतति नियमन का कोई अर्थ नहीं रह जायगा।** एक अमरीकी विचारक का कहना है कि इस वक्त सारी दुनिया के परिवार नियोजन में सहयोगी डाक्टर भी दिन-रात आपरेशन करते रहें तो एशिया की जन-संख्या ५०० वर्ष में नियंत्रित कर पायेंगे, किंतु तब तक तो हमने इतने नये बच्चे पैदा कर लिये होंगे, जिसका कि कोई हिसाब नहीं। ये दोनों ही संभावनाएं व्यावहारिक नहीं है, इसलिए संतति नियमन तो अनिवार्य करना पड़ेगा और यह अलोकतांत्रिक नहीं है।

आत्म-हत्या या किसी आदमी की हत्या करने में जितना नुकसान होता है, उससे हजार गुना एक बच्चे के पैदा करने से होता है। संतति नियमन अनिवार्य होने पर गरीब व अमीर, बुद्धिमान व नासमझ, हिंदू-मुसलमान-ईसाई का सवाल नहीं रह जायगा। हमारा धर्म-निरपेक्ष राज्य कैसे हुआ, यदि हिंदू कोड बिल सिर्फ हिंदू स्त्रियों पर लागू होता है, परंतु मुसलमान को चार शादियाँ करने का हक है, हिंदू को नहीं। हिंदू-मुसलमान के लिये अलग-अलग नियम नहीं होने चाहिये, सरकार को सोचना चाहिये 'स्त्री' के लिये। क्या ये उचित है कि चार स्त्रियाँ एक आदमी की पत्नियाँ बनें ? सवाल यह नहीं कि वह हिंदू हो या मुसलमान, यह असंगत है, अमानवीय है। कल को फिर यह भी कहा जा सकता है कि मुसलमान को हत्या करने की थोड़ी सुविधा देनी चाहिये। नहीं, हमें व्यक्ति और आदमी की दृष्टि से विचार करने की जरूरत है, क्योंकि वह सवाल पूरे मुल्क का है, इसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई अलग नहीं किये जा सकते।

दूसरी बात विचारणीय है कि हमारे देश में हमारी प्रतिभा निरंतर क्षीण होती चली गयी है और यही बच्चे पैदा करने की प्रक्रिया जारी रही, तो संभावना है कि हम सारे जगत में प्रतिभा में धीरे-धीरे पिछड़ते चले जायेंगे। अगर इस जाति को स्वास्थ्य, सौन्दर्य, चिंतन-प्रतिभा, मेधा आदि में ऊंचा उठाना है, तो संतति नियमन अनिवार्य तो होना ही चाहिये, बल्कि विशेषज्ञ की आज्ञा के बिना बच्चे पैदा करने का हक किसी को भी नहीं रह जाना चाहिये। कितने संक्रामक रोगों से भरे, 'ईडियट' और कोढ़ी बच्चे पैदा किये जाते हैं और उनके बच्चे पैदा होते चले जाते हैं, जिनके लिये देश में दयालु और धर्मात्मा लोग अनाथालय खोलकर इन बच्चों को पालने का इंतजाम भी कर देते हैं। ऊपर से तो यह दया दिखाई पड़ती है, लेकिन है बड़ी खतरनाक— इंतजाम तो यह होना चाहिये कि बच्चे स्वस्थ, सुन्दर, प्रभावशाली व संक्रामक रोगों से मुक्त हों। **प्रत्येक व्यक्ति को डाक्टरों और मनोवैज्ञानिकों के निर्देश के बिना शादी करने का हक तो होगा, लेकिन बच्चे पैदा करने का नहीं।**

हम अब तक मनुष्य जाति के साथ उतनी भी समझदारी नहीं कर सके, जो एक साधारण-सा माली बगीचे में करता है—वह 'क्रास ब्रीडिंग' से कैसे नये बीज विकसित करता है और सभी बीज नहीं बो देता है, बल्कि बीजों को छाँटकर गलत बीज अलग कर देता है और बड़ा फूल पैदा करने के लिये सभी छोटे फूल पहले ही काट देता है। माली की इसी होशियारी से फूलों की प्रदर्शनी में कोई फूल बाजी मार ले जाता है, क्योंकि पौधे की सारी शक्ति एक

ही फूल में प्रवेश कर जाती है, फूल बहुत विकसित हो जाता है। यदि एक आदमी १२ बच्चे पैदा करता है तो कभी भी बच्चे प्रतिभाशाली नहीं हो सकते, किंतु अगर एक ही बच्चा पैदा करे, तो उसके १२ बच्चों की सारी प्रतिभा एक ही बच्चे में प्रवेश कर सकती है।

आदमी इसलिये पिछड़ा हुआ है, क्योंकि वह अन्य चीजों के विषय में तो वैज्ञानिक चिंतन करता है, किन्तु अपने संबंध में नहीं। अभी भी कुंडली मिलायी जाती है और सजातीय विवाह प्रतिबद्धता पर ज़ोर दिया जाता है, लेकिन विज्ञान क्रमशः अंतर्जातीय, अंतर्देशीय और अंतर्राष्ट्रीय विवाहों को श्रेष्ठ बताता है, अर्थात् विवाह जितनी दूर हो उतना ही अच्छा। फूलों, फलों, अनाजों और गाय तथा अन्य जानवरों पर 'क्रास ब्रीडिंग' के प्रयोग कितने सफल एवं क्रांतिकारी सिद्ध हुए हैं, लेकिन आदमी के संबंध में इस समझ का उपयोग हम कब करेंगे ?

परिवार नियोजन, मनुष्य के वैज्ञानिक संतति नियोजन का पहला क्रांतिकारी कदम है और जो बड़ी क्रांति परिवार नियोजन की व्यवस्था मे हो जाती है, वह यह है—"हम पहली बार सेक्स को, यौन को, संतति से तोड़ देते हैं, अलग कर देते हैं। **अब तक यौन का, सम्भोग का अर्थ था—संतति का पैदा होना, किन्तु अब इससे संतति के पैदा होने की कोई अनिवार्यता नहीं है।** यौन और संतति को हम तो हिस्सों में तोड़ रहे हैं, जो कि बड़ी क्रांति है। इसका परिणाम अंततः यह होगा कि कल हम ऐसी संतति को भी पैदा करने की व्यवस्था करेंगे, जिसका हमारे यौन से कोई संबंध न हो—वह दूसरा कदम होगा, जिसकी अंतिम परिणति यह होगी कि हम वीर्य कणों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था कर सकेंगे और **भविष्य में यह जरूरी नहीं कि आपके जीवित रहते हुए आपका बेटा पैदा हो—आपके मरने के हजारों साल बाद भी आपका बेटा पैदा हो सकता है।**"

आदमी एक बार के संभोग में एक करोड़ वीर्य कण खोता है और अगर इनका संरक्षण हो सके तो वह करोड़ों बच्चों का बाप हो सकता है—एक आइन्स्टीन, एक बुद्ध हजारों बच्चों को जन्म दे सकता है। क्या यह उचित न होगा कि हम आदमी के बारे में विचार करें और इस बात की खोज करें ? संतति नियमन ने पहली घटना शुरू कर दी है, हमने सेक्स को तोड़ दिया है, अब हम कहते हैं कि बच्चे की फिक्र छोड़ दो और जैसे ही यह बात स्थापित हो जायगी दूसरा कदम भी उठाया जा सकेगा।

एक क्रांति हो रही है और अब बाप-बेटे का पूर्ववत् संबंध नहीं रह जायगा, वह टूट जायगा। लेकिन इस देश में समझ कम है और हम संतति नियमन को ही नहीं समझ पा रहे हैं, जो कि 'सेक्स मारलिटी' के सम्बन्ध में पहला कदम है। और एक बार सेक्स की पुरानी 'मारलिटी' (नीति) टूट जाय तो इतनी क्रांति होगी, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है, क्योंकि हमें पता भी नहीं कि जो भी हमारी नीति है, वह पुरानी यौन व्यवस्था से सम्बन्धित है। यौन व्यवस्था पूरी तरह टूट जाय, तो पूरी नीति बदल जायगी।

गांधी जी, विनोबा जी व अन्य धर्म-गुरु इसलिए भी डरे हुए हैं, कि अगर यह कदम उठाया गया, तो ये पुरानी नैतिक व्यवस्था को तोड़ देगा, नई नीति विकसित हो जायगी। **अब तक स्त्री को निरंतर दबाया जा सकता था, पुरुष अपने सेक्स के सम्बन्ध में स्वतंत्रता बरत सकता था, क्योंकि उसको पकड़ना बहुत मुश्किल था, इसलिए पुरुष ने ऐसी व्यवस्था बनाई थी, जिसमें स्त्री की पवित्रता और अपनी स्वतंत्रता का पूरा इन्तजाम रखा था।** इसलिए स्त्री को सती होना पड़ता था, पुरुष को नहीं—स्त्री के क्वांरे रहने पर भी बहुत बल था, पुरुष के क्वांरे रहने पर नहीं। अगर संतति नियमन की बात पूरी होगी और होनी ही पड़ेगी, तो लड़कियां भी लड़कों जैसी मुक्त हो जायेंगी—पहले के समान गर्भ रह जाने के उपद्रव में नहीं पड़ सकतीं। नई व्यवस्था में पहली दफा स्त्री को पुरुष की समान स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है, जिससे दोनों की समानता सिद्ध हो सकेगी, जो कि पहले सिद्ध हो ही नहीं सकती थी, क्योंकि पुरुष स्वतंत्रता बरत सकता था, किंतु पकड़े जाने के भय से स्त्री स्वतंत्रता नहीं बरत सकती थी। **विज्ञान की व्यवस्था ने स्त्री को पुरुष के बराबर स्वतन्त्र और निकट खड़ा कर दिया है और अगर अब पवित्रता निश्चित करनी है, तो दोनों की ही निश्चित करनी पड़ेगी—अगर स्वतन्त्रता तय करनी है, तो भी दोनों समान रूप से स्वतन्त्र होंगे।**

'बर्थ-कंट्रोल', संतति नियमन के कृत्रिम साधन स्त्री को पहली बार पुरुष के निकट बैठाते हैं, जबकि अब तक बुद्ध, महावीर आदि दुनिया के कोई भी महापुरुष नहीं बैठा सके। अब इसके दो ही मतलब होंगे— या तो स्त्री स्वतन्त्र की जाय, या पुरुष की अब तक की स्वतंत्रता पर पुनर्विचार किया जाय। सारी व्यवस्था बदल जायगी तो मनु की नीति नहीं चलेगी, इसलिए धर्म-गुरु परेशान हैं। **लेकिन बुद्धिमान लोगों को समझ लेना चाहिए कि उनकी घबराहट उनकी नीति को बचाने के लिये मनुष्यता की हत्या नहीं की जा सकती,**

उसे बचाना ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि मनुष्य रहेगा तो हम नई नीति खोज लेंगे, अन्यथा मनु और याज्ञवल्क की किताबें सड़ जायेंगी। मैं परिवार नियोजन में मनुष्यता के लिए भविष्य में बड़ी क्रांति की सम्भावनाएं देखता हूं। इतना ही नहीं कि आप अपने को दो बच्चों पर रोक लेंगे, बल्कि अगर परिवार नियोजन की स्वीकृति और उसका पूरा दर्शन हमारे खयाल में आ जाये, तो मनुष्य पूरी नीति एवं धर्म, अंततः परिवार की पूरी व्यवस्था और अंतिम रूप से परिवार का पूरा ढांचा बदल जायगा। कभी छोटी चीजें सब कुछ बदल देती हैं, अतः मैं परिवार नियोजन और कृत्रिम साधनों के पक्ष में हूं, क्योंकि मैं अंततः जीवन को चारों तरफ से क्रांति से गुजरा हुआ देखना चाहता हूं।

धर्म-गुरु का डरना भी ठीक है, क्योंकि उसे अचेतन में ये बोध हो रहा है कि यदि संतति नियमन और परिवार नियोजन की व्यवस्था आ गयी, तो अब तक की परिवार की धारणा, नीति सबकी सब बदल जायेगी। नई व्यवस्था जितनी जल्दी आये, उतना अच्छा है, क्योंकि पुरानी व्यवस्था से आदमी ने बहुत दुःख झेल लिया है। जरूरी नहीं कि नई व्यवस्था सुख ही लाएगी, लेकिन कम से कम पुराना दुःख तो न होगा— दुःख भी होंगे तो नए होंगे। और जो नये दुःख खोज सकता है, वह नये सुख भी खोज सकेगा। पूरे मनुष्य को नया करना है और असल में नये की खोज की हिम्मत जुटानी जरूरी है। परिवार नियोजन और संतति नियमन केन्द्रीय बन सकता है, क्योंकि सेक्स मनुष्य के जीवन में केन्द्रीय तत्व है, चाहे हम उसकी चर्चा करें या न करें। अगर उसमें कोई भी बदलाहट होती है, तो हमारा पूरा धर्म, पूरी नीति सब बदल जायेगी, बदल जानी चाहिए।

मनुष्य के भोजन, निवास, भविष्य की समस्याएं ही इससे बंधी नहीं हैं, मनुष्य की आत्मा, भविष्य की नैतिकता भविष्य का धर्म, मनुष्य के भविष्य का परमात्मा भी इस बात पर निर्भर है कि हम अपने यौन के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण अख्तियार करते हैं। यह जरूरी नहीं कि मेरी सारी बातें मान ली जायें, इतना ही काफी है कि आप इन बातों पर विचार करें, सोचें। अगर इस देश में सोच-विचार आ जाय, तो शेष चीजें अपने आप छाया की तरह पीछे चली आयेंगी। ●★●

'ऐसे हैं भगवान रजनीश' : स्वामी अगेह भारती द्वारा भगवान रजनीश पर लिखे गए अंतरंग मर्मस्पर्शी संस्मरण, अक्टूबर में प्रकाशित। *प्रकाशक* : मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

ही सता रहा हूं। किसी के हित में सताना बहुत आसान है—वह गौरवान्वित पुण्यकारी हो जाता है। इसलिये अपनों को सताने में हमारे चेहरे सदा साफ होते हैं; दूसरों को सताने में हमारे चेहरे कभी साफ नहीं होते। इसलिये दुनिया में जो बड़ी से बड़ी हिंसा चलती है वह दूसरे के साथ नहीं, वह अपनों के साथ चलती है।

★ अपनों के साथ जो हिंसा है, वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिये जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो उसे पहले अपनों के प्रति जो हिंसा है उसके प्रति जागना होगा।

★ हम चौबीस घंटे प्रेम में नहीं होते। किसी के साथ प्रेम के सिर्फ क्षण होते हैं; प्रेम के घंटे नहीं होते, दिन नहीं, वर्ष नहीं। लेकिन जब हम क्षणों के स्थायित्व को धोखा देते हैं, तो, हिंसा शुरू हो जाती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो यह क्षण की बात है; अगले क्षण भी करूंगा, जरूरी नहीं—कर सकूंगा, जरूरी नहीं। लेकिन अगर मैंने वायदा किया कि अगले क्षण भी प्रेम जारी रखूंगा तो अगले क्षण जब हम दूर हट गये होंगे और हिंसा बीच में आ गयी होगी, तब हिंसा प्रेम की शक्ल लेगी।

हिंसक समाज :

★ दुनिया में जितनी अपनी बनाने वाली संस्थाएं हैं, सब हिंसक हैं। परिवार से ज्यादा हिंसा और किसी संस्था ने नहीं की, लेकिन उसकी हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। इसलिए संन्यासी को अगर परिवार छोड़ देना पड़ता था, तो उसका कारण था—सूक्ष्मतम हिंसा से बाहर हो जाना। अपने कहने वाले सूक्ष्मतम हिंसा कर रहे हैं, तो उनसे लड़ना मुश्किल है, क्योंकि वे हमारे हित में ही कर रहे हैं। परिवार का ही फैला हुआ बड़ा रूप समाज है, इसलिए समाज ने जितनी हिंसा की है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

★ समाज ने करीब-करीब व्यक्ति को मार डाला है, इसलिए जब आप समाज के सदस्य की हैसियत से किसी से व्यवहार करते हैं तब आप हिंसक होते हैं। आप अगर जैन की तरह किसी व्यक्ति से व्यवहार करते हैं, तो आप हिंसक हैं और अगर हिंदू या मुसलमान की तरह करते हैं, तो भी आप हिंसक हैं; क्योंकि अब आप व्यक्ति की तरह व्यवहार न करके समाज की तरह कर रहे हैं। और अभी व्यक्ति ही अहिंसक नहीं हो पाया, हो तो समाज के अहिंसक होने की संभावना तो बहुत दूर है। समाज तो अहिंसक हो ही नहीं सकता, इसलिए दुनिया में जो बड़ी हिंसा है वह व्यक्तियों ने नहीं की, वह समाजों ने की।

संकलन : **मा योग क्रांति**

परमात्म प्रकाश प्रेमी पिपासुओं में अमृत ज्योति जगाता रहे

प्रस्तुत हैं भगवान श्री रजनीश की अमृत-वाणी की

पत्र-पत्रिकायें

पाक्षिक पत्र : **योग-दीप** *(मराठी में)*

संपादक : श्री गोपीनाथ तलवलकर, मा आनन्द वंदना (वंदना पुंगलिया)

प्रकाशक : श्री माणिकचंद जी बाफना

१०१, टिम्बर मार्केट, जीवन जागृति केन्द्र, पूना–२. फोन २४१४८

English Bi-Monthly Magazine

'SANNYAS'

Editor : Ma Anand Prem, Ma Veet Sandeh

Single Copy Rs. 4.00, Annual Subscription Rs. 18.00, Life Membership Rs. 300

Enroll yourself as a Member.

Contact : J. P. Lashkari— 'Sannyas', Selprint, A-Z, Industrial Estate, Fergusson Road, Lower Parel, Bombay-13.

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक

त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादन : मा योग क्रांति, स्वामी कृष्ण कबीर

वार्षिक : मूल्य ८ रु.

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र,

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,

मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९

Phone : 327618

मुख पृष्ठ : दीनू रावल, राजकमल स्टुडियो, राजकोट